श्रीसीताराम - परिचय

व

मानस-शंका-समाधान

लेखक -

श्री 108 स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज

स्थान-सरौती, थाना - अरवल, पोस्ट- रामपुर चौरम

मूल्य रु 1½ =

प्रकाशक -

डा. कुञ्जविहारी शर्मा

मो. पो. ओवरा, जि. (गया)

प्रामाण्य ग्रन्थों की सूची

1। सामवेद भाष्य

2। नारदीय पुराण

3। वाराह पुराण

4। आदि पुराण

5। अग्नि पुराण

6। ब्रह्म वैवर्त पुराण (कृष्णखण्ड)

7। विष्णु पुराण (पराशरकृत)

8। पद्म पुराण

9। ब्रह्म पुराण

10। मत्स्य पुराण

11। विष्णुधर्मोत्तर पुराण (व्यासकृत)

12। कूर्म पुराण

13। श्रीमद्भागवत पुराण

14। ईश्वर संहिता

15। वृहद् हारीत संहिता

16। वृहद् ब्रह्म संहिता

17। स्कन्द पुराण

18। महाभारत - शान्तिपर्व

19। हरिवंश (विष्णुपर्व)

20। वैकुण्ठ वर्णन

21। वाल्मीकि रामायण

22। अध्यात्म रामायण

23। तुलसीकृत रामायण

24। हनुमान नाटक

दो शब्द

योंतो संसारी जीव अहंकारवश भले ही अपने को किसी कार्य का कर्ता मान लेता है, किन्तु है यह उसका अज्ञान ही। वास्तविकता तो यह है कि सच्चिदानन्दघन, पुराणपुरुषोत्तम भगवान नारायण के कृपाकटाक्ष के बिना कोई भी कार्य साध्य नहीं हो सकता। आज उन्हीं प्रभु की असीम कृपा से प्रस्तुत पुस्तक आपलोगों के समक्ष प्रकाश में आ सका है।

यों तो श्रीतुलसीदासकृत श्रीमन्मानसरामायण के अर्थ दोहा चौपाईयों के ऊपर कई एक विद्वानों ने उनके मर्म प्रकाशानार्थ - **'मानसमयंक''शंकावलि'** इत्यादि ग्रन्थ लिखे किन्तु उन ग्रन्थों के अध्ययन से मेरे मानस का वास्तविक समाधान नहीं हो पाया था। उसी प्रसंग में सरौती स्थानाधीश श्री **1008** श्री स्वामी जी महाराज के द्वारा लिखित इन अवतरणों को देखने का सुयोग प्राप्त हुआ। जिनके देखने से मेरे चित्त को परम शान्ति मिली। अतः जनकल्याणार्थ मैंने इसे पुस्तक रूप में प्रकाशित करना आवश्यक समझ, अनुरोध करके श्रीस्वामी जी महाराज से प्रकाशित करने का आदेश प्राप्त कर लिया जिसको हमारे अग्रज तथा श्री स्वामी जी महाराज के आज्ञानुवर्ती शिष्य पं. विद्याभानु शर्मा जी उन्हीं गुरुदेव की आज्ञा से यत्र तत्र स्थित यत्किंचित् प्रतियों को मिलाकर प्रेसकौपी तैयार किया।

आपलोगों के सामने इसे रखते हुए मुझे अपार आनन्द होता है, तथा साथ ही मैं यह आशा करता हूँ कि भगवत् तथा भागवत् प्रेमीजन अवश्य ही इसे अपने हृदय में स्थान देंगे। इसकी उपयोगिता के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं, वह तो विज्ञ पाठक अध्ययन के बाद इसमें संगृहीत सामग्री को देखकर स्वयं ही समझ लेंगे। शुभमस्तु।

प्रकाशक - डा. कुञ्जविहारी शर्मा, बरपा।

यह क्यों ?

श्री रामचन्द्र जी को जानने के लिए साधन श्री वाल्मीकि रामायण या गोस्वामी तुलसीदास जी कृत रामायणादि हैं। जिसमें श्री रामचन्द्र जी को परब्रह्म परमात्मा ईश्वर आदि पर्यायवाचक अनेक शब्दों से कहा गया है। किन्तु पापदूषित आत्माओं के हृदय को कलुषित होने के कारण भगवान् के ऐश्वर्य की ओर ध्यान नहीं जाता, परञ्च माधुर्य विषयों को देखकर प्राकृत मनुष्य या राजकुमर मानते हैं। यह हमारे प्रकरण हमारे सामने आया, इसलिए श्री रामचन्द्र जी के सम्बन्ध में जैसा वाल्मीकीय रामायण तथा अन्य ग्रन्थों में मिला उसे संग्रह किया था। इस लेख को देखकर वाल्यकाल से श्रीवैष्णवधर्म से रंजित, परम भक्तिरस को पान करने वाले रामरसायन के रसिक, जिनको आज राजवैद्य-डाक्टर-शब्दों या श्री कुञ्जविहारी शर्मा से कहते हैं। इनके मन में अटूट श्रद्धा हुई कि इस लेख को मुद्रित करवा के धार्मिक जनताओं के आत्मकल्याणार्थ प्रकाशित कर दें। अतः मैं इन्हें अपना परम भक्त जानकर इसे इनके हाथों में दे दिया।

लेखक -

श्री 108 स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज

स्थान-सरौती, थाना - अरवल, पोस्ट- रामपुर चौरम ।

भूमिका

सृष्टि की आयु बहुत बड़ी संख्या के वर्षों की होती है। इसकी उत्पत्ति तथा विनाश का क्रम अनादि काल से चल रहा है। आत्मा अजर अमर तथा अनन्त है। ये आत्मायें ईश्वरविमुख सांसारिक विषयों में आसक्त रहने के कारण संसारबद्ध हो, प्रत्येक सृष्टि के आद्योपान्त किसी न किसी प्रकार के देहों में रहा ही करती है। क्योंकि इसका भ्रमण क्षेत्र अतिविस्तृत चौरासी लाख योनि बताया जाता है। और स्वकर्म वश इन आत्माओं को उन सभी योनियों में घूमना ही पड़ता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष अनुभवगम्य असह्य दुःखों से दुःखित बद्धात्माओं को देखकर जब कभी परम कारुणिक परमात्मा इसके ऊपर अपनी निर्हेतुक कृपा करते हैं, यथा- **'एवं संसृति चक्रस्थे भ्राम्यमाणे स्वकर्मभिः। जीवे दुःखाकुले विष्णुः कृपा क्वाप्युपजायते।'** तो इसे अलभ्य मानव शरीर मिलता है जो मोक्षद्वार माना जाता है। किन्तु इस तरह शरीर मिलने पर भी आत्मा में पूर्वजन्मों के देहों द्वारा किये शुभाशुभ कर्मों का संस्कार चिपका रहता है। अतः उन भिन्न भिन्न संस्कारों के फलस्वरूप ही मनुष्यों में भिन्न भिन्न बुद्धि विचार भी पाये जाते हैं। इसीलिये इस संसार में किसी विषय के विचार विमर्श, कार्यकलाप, सिद्धान्तों में भी विभिन्नता पायी जाती है। इसी कारण आज संसार में अनेकों प्रकार का वादविवाद फैला हुआ है।

उक्त विभिन्न वादों के फलस्वरूप भगवत्परत्वविवेचन में भी कुछ लोग यह कहा करते हैं कि भगवान् श्री रामचन्द्र जी भी एक प्राकृत, किन्तु गान्धी जी वगैरह के सदृश एक प्रभावशाली व्यक्ति थे। इसी विशेषता के कारण ईश्वर भी कहलाये थे। कुछ लोग यह कहते हैं कि श्री राम जी ईश्वर के अवतार थे, और कुछ इन्हीं को स्वयं अवतारी, अर्थात् इन्हीं से विष्णु इत्यादि अवतार लिया करते हैं ऐसा मानते हैं।

इन वादियों में श्री रामचन्द्र जी को एक प्राकृत पुरुष मानते हैं इनकी भूल तो मूर्खता या पाप के कारणवश है **"मुखमस्तीति वक्तव्यं दश हस्ता हरीतकी"** के समान इनका कथन शतशः निर्मूल एवं प्रौढ़ीवाद है। हाँ, जो श्री राम जी को विष्णु के अवतार, या जो विष्णु से भी परे इन्हीं को मानते हैं, इन दोनों के कथनों के तथ्यातथ्यनिर्णयार्थ वेद शास्त्रादि के प्रवल प्रमाणों तथा सच्छास्त्र किसको प्रतिपादन करता है इस पर ध्यान देने से स्वतः बोध हो जायेगा।

यद्यपि ईश्वर का अनन्त नाम है और उन नामों के अर्थों में भेद भी पाया जाता है, किन्तु वास्तविक उन नामों द्वारा व्यक्तित्वबोध में कोई अन्तर नहीं पड़ता। क्योंकि एक ही ईश्वर सर्वत्र व्याप्त एवं विख्यात है। इसीलिए इस ईश्वर को मत्स्य कूर्मादि रूपों में अवतार लेने पर भी तत्वद्रष्टा ऋषिगण पहचान कर ईश्वर नारायण शब्दों से प्रार्थना किया है। श्रीरामजी को **"भवान्नारायणो देवः।"** **"वयमीश निवृत्ताः"** इसमें वाराह को ईश्वर शब्द से

तथा **"नूनं त्वं भगवान् साक्षात् हरिर्नारायणोऽव्ययः। अनुग्रहाय लोकानां धत्सेरूपं जलौकसाम्।"** इसमें मत्स्य को हरि नारायण शब्द से सम्बोधन किये हैं। अर्थात् नाम रूपों में भेद रहते हुए भी ईश्वर-तत्व सबों में एक ही रहता है।

ईश्वर को सर्वव्यापक होने के कारण वेदों की संहिताओं तथा अन्यान्य ग्रन्थों में विष्णु शब्द से ही व्यवहार पाया जाता है। यद्यपि वायु इन्द्रादिक व्यापक देवों को भी विष्णु शब्द से यत्र तत्र व्यवहार किया गया है, किन्तु प्रसंगवश विष्णु नारायण या अन्यान्य देव समझ लिये जाते हैं। श्रुति मुक्तावस्था में जीव को भी विष्णु कहा है। **"स विष्णुरेव भवति स विष्णुरेव भवति"** इत्यादि।

नीचे वेद तथा संहिताओं में व्यवहृत कुछ सूक्तियों का उल्लेख करते हैं।

सामवेद भाष्य इन्द्रपर्व अ. **2,** खण्ड **11** पृ. **175,** इदं विष्णुर्विचक्रमे, मण्डल **108** विष्णुना सुतं., मण्डल **225,** विष्णवे मरुत्वते, मं. **230,** विष्णोरथन्तरम् , मं. **5,** उत्तरार्चिक सामवेद, इदं विष्णुर्विचक्रमे, विष्णुर्गोपा अदभ्य., विष्णोः कर्माणि पश्यत., तद्विष्णोः परमं पदम् , यतो विष्णुर्विचक्रमे., विष्णु यद्भावषणम्., इन्द्रा विष्णू., अथातो विष्णोः, विष्णवे ददासति., विष्णोः सुमतिं भजामहे., मं. **3,** विष्णोः सरिव वां., मं. **4,** विष्णोः शुक्र ते., मं. **5,** यजुर्वेद अध्याय **1,** आदित्यैरास्नासि विष्णोः, मं. **3,** आदित्यैव्युदनमसि विष्णोः, मण्डल **2,** विष्णोः पाहि पाहि, मण्डल **6,** अध्याय **4,** सोमस्य नोविरसि विष्णोः, मण्डल **10,** विष्णोर्नुकं वीर्याणि, विष्णवे त्वा., अध्याय **5,** दिवो वा विष्णो महो वा विष्णो, विष्णवे त्वा., उरु विष्णोः, अध्याय **6,** तदुरुगायस्य विष्णोः, यजुर्वेद अध्याय **7,** विष्णु स्वामिन्द्रियेण पातु, अध्याय **8,** विष्णु उरुगायैष, विष्णु शिपिविष्टः, सहोभिर्विष्णु, अध्याय **9,** आदित्यान् विष्णुं, वाचाम् विष्णुम् , अध्याय **13,** विष्णोः कर्माणि पश्यत, अध्याय **23,** येषु विष्णुस्त्रिषु, अध्याय **25,** विष्णोरष्टमी, इस प्रकार अध्याय **33, 34, 36,** सामवेद संहिता उत्तरार्चि के अ. पृ. **851, 852, 853, 854,** में सर्वत्र ईश्वर का बोध कराने के लिये।

।। श्रीमते रामानुजाय नमः ।।

श्री सीताराम - परिचय

देवो नारायणः साक्षाद्रामो ब्रह्मादि वन्दितः। प्रद्युम्नो भरतो भद्रे शत्रुघ्नो ह्यनुरुद्धकः ।नारदीय पुराण उत्तरखण्ड, अ. 75।" हे भद्रे, ब्रह्मादि देवों के प्रार्थना करने पर साक्षात् नारायण ही राम हुए। प्रद्युम्न भरत, अनिरुद्ध शत्रुघ्न और संकर्षण कल्याणकारक लक्ष्मण हुए।"**जामदग्नेय रामेण त्वया भूत्वा सकृत्प्रभो।पुनश्च रावणो रक्षः क्षपितं क्षात्रतेजसा।**बाराह पु अ 1।"हे प्रभो! आपने एकबार परशुराम होकर दुष्ट क्षत्रियों का नाश किया तथा पुनः राम होकर स्वक्षात्र तेज से रावणादि राक्षसों का नाश किया।"**तस्यपुत्र स्वयं जज्ञे रामनामा महाबली।चतुर्धा सो अव्ययो विष्णुः परितुष्टो महामुने।**" हे महामुने स्वयं अव्यय विष्णु ही यज्ञ से सन्तुष्ट होकर महाबली राम लक्ष्मणादि चार रूपों से व्यक्त हुए। "**चित्रकूटे गिरौ विष्णुः राघवश्च प्रकीर्त्यते**"।बाराह पु 12।2।चित्रकूट पर्वत के ऊपर जो विष्णु हैं वही राघव भी कहलाते हैं।

"**नमामि रामं नरनाथमच्युतं कविं पुराणं त्रिदशारिनाशनम्** ।।" पुरातन विद्वान, अच्युत, नरनाथ, राक्षसों के नाशक श्रीरामजी को नमस्कार है। "**द्विधाथवायौ वियति प्रतिष्ठितः भवान् हरिः शब्दचरः पुमानसि। भवाञ्छशिः सूर्य हुताशनोऽसि त्वयि प्रलीनं जगदेतदुच्यते।**"हे हरे ! आप सम्पूर्ण पुल्लिङ्ग शव्दभाव वाच्य हैं। आकाश, वायु सर्वत्र अन्तर्बहिः व्याप्त हैं। आप ही चन्द्र सूर्य और अग्नि हैं।आप ही में यह सृष्टि विलीन हो जाती है।

"**वेदेषु नष्टेषु भवाँस्तथा हरेः करोसि मात्स्यं वपुरात्मनस्सदा। कौर्मं तथा स्ववपुरास्थितस्सदा युगे युगे माधव सिन्धुमन्थने।।"हे** हरे ! आप वेदों के नष्ट होने पर मत्स्य रूप से उसकी रक्षा करते हो तथा प्रतियुगों में समुद्रमन्थन काल में कूर्मरूप धारण करते हो।

"**त्व्या ततं विश्वमिदं समस्तं सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे। समस्त विश्वेश्वर विश्वमूर्ते सहस्रवाहो जय देव देव।।**" हे विश्वेश्वर ! हे विश्वमूर्ते !हे सहस्रवाहो !तुम सनातन पुरुष हो। इस विश्व का तुम्हीं विस्तार किये हो। आप देवों के देव का जय हो।

"**इत्थं दशरथस्याहं पुत्रो भूत्वा ददौ सुखम्। श्रुत्वा क्रमेण किमसौ विष्णुः जातो ममात्मज**।आदि पु. अ. 16।" विलक्षण भगवान् का अवतार सुनकर दशरथ आश्चर्यचकित हुए कि क्या विष्णु ही हमारे पुत्र हुए हैं ? इस प्रकार दशरथ का पुत्र होकर मैं उन्हें सुख दिया। "**रावणदेर्वधार्थाय चतुर्धाभूत्स्वयं हरिः**।अग्नि पु. अ. 6।" रावणादि राक्षसों को नाश करने के लिये स्वयं हरि ही चार रूपों में विभक्त(राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुध्न) हो अवतीर्ण हुए। "**ब्रह्मणा दशरथेन त्वं विष्णो राक्षसमर्दनः।**" हे विष्णु ! आप दशरथ के प्रार्थना करने पर राक्षसमर्दक राम हुए।

"**ब्रह्मणा प्रार्थितो विष्णुजातो दशरथात्मजः। कौशल्यायाञ्च भगवांस्त्रेतायाञ्च मुदान्वितः।।**

कैकेय्यां भरतश्चैव रामो तुल्यगुणेन च। लक्ष्मणश्चापि शत्रुघ्नः सुमित्रायां गुणार्णवः।ब्र. वैव. पु. कृष्ण खं. 62।3, 4।" त्रेता युग में ब्रह्मा के प्रार्थना करने पर भगवान् विष्णु प्रसन्न होकर कौशल्या द्वारा दशरथ के पुत्र राम हुए। भरत कैकेयी द्वारा तथा गुणार्णव भगवान् के गुणों के तुल्य गुणवान् लक्ष्मण और शत्रुघ्न सुमित्रा द्वारा उत्पन्न हुए। "**भगवानब्जनाभः जगतः स्थित्यर्थमात्मांशेन रामलक्ष्मणभरत शत्रुघ्नरूपेण चतुर्धा पुत्रत्वमयासीत्**।विष्णु पु. ।" भगवान् पद्मनाभ विष्णु जगत् के कल्याणार्थ अंशों सहित राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न रूप में अवतीर्ण हुए।

"**स्वायम्भुवो मनुः पूर्व द्वादशार्णं महामनुम्।जजाप गोमतीतीरे नैमिषे विमले शुभे।।**

तेन वर्ष सहस्रेण पूजितः कमलापतिः। मत्ताप वरं वृणीष्वेति तं मनुं भगवान् हरिः। प. पु. उ. 242।1 - 2।" पूर्वकाल में स्वायम्भुव मनु पवित्र नैमिष क्षेत्र में गोमती गंगा के किनारे द्वादशाक्षर मंत्र के द्वारा भगवान् महामनु विष्णु का आराधन सहस्रों वर्षों तक किया था जिससे प्रसन्न हो भगवान् कमलापति वरदान देने का वचन दिया।

"**ततः प्रोवाच हर्षेण मनुः स्वायम्भुवो हरिम्।पुत्रत्वं भज देवेश त्रीणि जन्मानि चाच्युत।242।4।**" तब मनु वरदान मांगे कि हे भगवन् आप तीन जन्मों तक मेरे पुत्र होवे।

"**इत्युक्तस्तेन लक्ष्मीशः प्रोवाच सुमहा गिरा।भविष्यामि नृपश्रेष्ठ यत्ते मनसि कांक्षितम्।242।5।**

ममैव च महाप्रीतिस्तव पुत्रत्वहेतवे।एवं दत्वा वरं तस्मै तत्रैवान्तर्दधे हरिः।242।6 एवं **8।**" यह सुनकरभगवान् ने कहा(एवमस्तु) आपकी इच्छानुकूल ही होवे क्योंकि पुत्र के कारण ही आपकी प्रीति मुझ में हुई है। इतना कहकर भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये। "**अस्याभूत् प्रथमं जन्म मनोः स्वायम्भुवस्य च। रघूणामन्वये पूर्व राजा दशरथोऽभवत्।242।8** एवं **9।**" यही स्वायम्भुव मनु का जन्म रघुवंश में दशरथ के रूप में हुआ।

"**भयार्ता शरणं जग्मुरीश्वरं कमलापतिम्।त्रिदशान् सर्वान् ब्रह्मरुद्रपुरोगमान्।।**

राज्ञो दशरथस्याहमुत्पत्स्यामि रघोः कुले। वधिष्यामि दुरात्मानं रावणं सह बान्धवम्।242।27-28।"
राक्षसों के उपद्रव से भयभीत देवगण जब भगवान् कमलापति के शरण गये तो भगवान् उन सबों को आश्वासन दिया कि मैं रघुकुल में दशरथ के पुत्र होकर रावणादिकों का संहार करूँगा। "**इत्युक्ताः देवताः सर्वे देवदेवेन विष्णुना।वानरत्वमुपागम्य जज्ञिरे पृथिवीतले।242।31।**" भगवान् की आज्ञा सुनकर देवगण पृथ्वी तल पर वानर रूप में अवतार धारण किये। "**वैवस्वतमनोः पुत्रो राज्ञां श्रेष्ठो महाबलः। इक्ष्वाकुरिति विख्यातः सर्वधर्मविदाम्बरः।। तदन्वये महातेजा राजा दशरथो बली।242।33।**" वैवस्वत मनु के पुत्र इक्ष्वाकु हुए जो राजाओं में सर्वश्रेष्ठ तथा धर्मो को जानने वाले थे। इन्हीं के वंश में महाबली राजा दशरथ हुए। "**कौशल्या जनयामास पुत्रं लोकेश्वरं हरिम्। विष्णोः सन्तुष्टये तत्र तर्पयामास भूसुरान्।242।82।**" कौशल्या ने सर्वलोकेश्वर हरि को पुत्ररूप में जन्म दिया। तब भगवान् की सन्तुष्टि के लिए दशरथ ने ब्राह्मणों को तृप्त किया। "**कैकेय्यां भरतो जज्ञे पाञ्चजन्यांशसम्भवः। अनन्तांशेन सम्भूतो लक्ष्मणः परवीरहा।।सुदर्शनांशशत्रुघ्नः संजज्ञेऽमितविक्रमः।242।94-95।**" कैकेयी द्वारा भरत पाञ्चजन्य के अंश से और लक्ष्मण अनन्त (शेष) के अंश से उत्पन्न हुए। सुदर्शन के अंश से अमित विक्रमवाले शत्रघ्न उत्पन्न हुए। परशुराम की प्रार्थना - "**त्वमादिपुरुषः साक्षात् परब्रह्मपरोऽव्ययः। त्वमनन्तो महाविष्णुः वासुदेवपरात्परः।242।170।**" आप साक्षात् आदिपुरुष, परब्रह्मपर अव्यय, अनन्त, महाविष्णु, वासुदेव, परात्पर नारायण सर्वस्व हो।

"**आपो नारा इति प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायण ः स्मृतः।**ब्र. पु. अ. 71 तथा वराह पु. **2।26।**" अविनाशी (नर)परमात्मा से उत्पन्न होने के कारण जल नार कहलाता है और परमात्मा उसका अयन होने के कारण एवं उससे भी पूर्व में रहने के कारण नारायण कहलाते हैं। "**स देवो भगवान् सर्व व्याप्य नारायणं विभु**"वह भगवान् नारायण सर्वव्यापक है। "**रामो दाशरथिर्भूत्वा स तु देव प्रतापवान्। जघानरावण संख्ये त्रैलोकस्य भयङ्करम्**" यही प्रतापवान् देव नारायण दशरथ के पुत्र राम होकर त्रैलोक्यभयंकर रावण का संहार किया।

"**नारायणात्मकः सर्वे रामस्ते अग्रजोऽभवन्। रावणान्तकरस्तद्वद्रघूणां वंशवर्धनः।। वाल्मीक तस्य चरितं चक्रे भार्ग वसत्तम।मत्स्य पु . अ. 12।** नारायणात्मक दशरथ के पुत्रों में राम सवसे वड़े हुए। जैसे रावण के वध करने वाले हुए इसीप्रकार रघुकुल को उज्जवल करनेवाले भी हुए। जिनका चरित्रवर्णन महर्षि वाल्मीकि ने किया है।

"**भविष्यति च धर्मात्मा रामो दशरथात्मजः। रघुवंशे समुत्पन्नः विष्णु मानुषरूपधृक्।**विष्णुधर्मोत्तर पु.।" विष्णु मनुष्य का रूप धारण कर रघुवंश में दशरथ के पुत्र राम होंगे।

"**रामो दाशरथिर्वीरोधर्मज्ञो लोकविश्रुतः। भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः।।**

सर्वे शक्रसमं युद्धे विष्णुशक्तिसमन्विताः। जज्ञे रावणनाशार्थं विष्णुरंशेन विश्वभुक्।कूर्म पु. 21।17-18।"

विश्वभोक्ता विष्णु के सर्वांशयुक्त इन्द्र के सदृश युद्ध में वीर, लोकविख्यात, धर्मज्ञ, महाबली - राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न दशरथ के पुत्र रूप में अवतीर्ण हुए।

"**पश्यन्त्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा सहस्रपादोरुभुजाननादभुतम्।**

सहस्रमूर्धश्रवणाक्षिनासिकं सहस्रमौल्यम्बरकुण्डलोल्लसत्।भा.1।3।4।" योगी लोग दिव्य दृष्टि भगवान् के हजारों पाँव, हजारों भुजायें, हजारों मुखों के कारण एवं हजारों मुकुट, कुण्डल और सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित रहने के कारण अत्यन्त विलक्षण रूप का दर्शन किया करते हैं। "**एतान्नावताराणां निधानं बीजमव्ययम्**।भा. 1।3।5।" भगवान् के इसी विष्णुरूप से नाना अवतार हुआ करते हैं। "**अंशांशेन चतुर्धागात् पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः**।भा. 9।10।2।" देवताओं की प्रार्थना सुन भगवान् चार रूप से अवतार लिए।

"**इति व्यवसितो बुद्धया नारायणगृहीतया। हित्वान्यभावज्ञानं ततः स्वं भावमाश्रितः**।भा. 9।9।48।" जब किसी प्राणी की बुद्धि परमात्मा नारायण आकर्षित करते हैं तो वह अपनी व्यवस्थित बुद्धि द्वारा अज्ञानभाव को भूलकर परमात्मा के वास्तविक रूप का ज्ञान करता है। "**यत्तद्ब्रह्मपरं सूक्ष्ममशून्यं शून्यकल्पितम्। भगवान् वासुदेवेति यं गृणन्ति हि सात्वताः**।भा. 9।9।49।" यह परब्रह्म अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण शून्यवत् प्रतीत होता है किन्तु शून्य नहीं है। भक्तजन उसी को वसुदेव भगवान् के नाम से कहा करते हैं। "**नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम्** ।भा.10।40।1।"हे प्रभो ! आप सम्पूर्ण कारणों के भी कारण और अविनाशी आदिपुरुष नारायण हैं।

"**नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचरायच। हयशीर्षे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे**।भा. 10।40।17।

अकूपाराय महते नमो मन्दरधारिणे।क्षित्युद्धारविहाराय नमः शूकरमूर्तये।18।

नमस्तेऽद्भुत सिंहाय साधुलोकभयापह।वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च।19।

नमो भृगूणांपतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे। नमस्ते रघुवर्याय रावणान्तकराय च।20।

हे प्रभो ! आप प्रलयकालीन समुद्र में वेदों, ऋषियों तथा औषधियों के रक्षार्थ मत्स्यरूप धारण करने वाले को नमस्कार है। वेदों के चुरानेवाले मधु कैटभ नामक राक्षसों को मारने वाले आपको नमस्कार है। विशाल कच्छपरूप से मन्दराचल को धारण करने वाले आपको नमस्कार है। साधुजनों के भय को विनाश करने वाले अद्भुत नृसिंहरूप एवं वामनरूप धारण कर अपने पगों से तीनों लोकों को नापलेने वाले आपको नमस्कार है। हे प्रभो ! आप उग्र स्वभाव वाले क्षत्रियों को परशुराम बनकर तथा राक्षस रावण को रघुवर राम बनकर नाश किया ऐसे रूप धारण करने वाले आपको नमस्कार है। "**पुरा नारायणः श्रीमान् लोकरक्षणहेतुना। अवतीर्य रघोर्वंशे रामो रक्षकुलान्तकः**।ईश्वर सं.अ. 20।" पूर्वकाल में श्रीमान् नारायण ही लोकसंरक्षणार्थ रघुकुल में रामरूप से अवतार लेकर राक्षसों का नाश किया। "**श्रीराम इति नामेदं तस्य विष्णोः प्रकीर्तितम्। रमया नित्ययुक्तत्त्वात् राम इत्यभिधीयते**।वृ. हारीत सं अ.6।" वह विष्णु ही रमा (लक्ष्मी) के साथ नित्य रहने के कारण श्रीराम कहाते हैं।

"सिंहस्कन्धानुरुपांसं कम्बुग्रीवं महाहनुम्। पीनवृत्यायतस्निग्ध महाबाहु चतुष्टयम्।।

शंखचक्रधनुर्बाणंपाणिनं सुमहाबलं। लक्ष्मणानुचरं रामं ध्यात्वाराक्षसनाशनम्।।" सिंह के समान कंधावाले, शंख के समान ग्रीवा, महाहनु, चौड़ा वक्षस्थल, स्निग्ध महान् चारों भुजाओं में शंख चक्र धनुष तथा बाण आयुधों को धारण करने वाले महाबली, राक्षसों को नाश करनेवाले लक्ष्मणयुक्त राम का ध्यान करके किसी भी कार्य का प्रारम्भ करे। **"त्रेतायुगे रघोर्वंशे रामो दशरथात्मजः। नरनारायणांशौ द्वौ जातो भुवि महाबलौ।।** त्रेता युग में नर और नारायण के अंश से रघुवंश में दशरथ के पुत्र महाबलवान् राम और लक्ष्मण उत्पन्न हुए। **"परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय जातोऽहं रामसंज्ञया।** वृ ब्रह्म संहिता **7।10।"** **"शुक्लाम्वरधरः शुद्धो गृहमागत्य वाग्यतः। प्रक्षाल्यपादावाचम्य स्मरन्नारायणं प्रभुम्। रामयणं पुस्तकञ्च अर्चयेद्भक्तिभावतः।** स्क. पु. उ. खं. अ. **4।"** साधुओं की रक्षा, दुष्टों का विनाश और धर्म की संस्थापना के लिए मैं रामरूप में हुआ हूँ। श्रीरामायण की पूजा के प्रसंग में नारदजी कहे हैं कि स्नानादि क्रिया द्वारा शुद्ध हो, शुक्लवस्त्र धारण कर, वाक्संयत हो आचमनादि कर भगवान् नारायण को स्मरण करते हुए भक्तियुक्त रामायण पुस्तक की पूजा करे।

"आवाहनासनाद्यैश्च गन्धपुष्पादिभिर्व्रती। ॐ नमोनारायणायेति पूजयेद्भक्तितत्परः।।

तस्य विष्णुः प्रसन्नः स्याच्छ्रियासह द्विजोत्तमाः। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके स गच्छति।।" पूजन आवाहन आसन गन्धपुष्पादि उपचारों द्वारा भक्ति तत्पर हो **"ॐ नमो नारायणाय"** यह मंत्रोच्चारणपूर्वक पूजन करे। ऐसा करने से लक्ष्मी सहित विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं जिससे वह पूजक पापरहित हो विष्णुलोक को प्राप्त करता है।

संध्यांशे समनुप्राप्ते त्रेताया द्वापरस्य च। अहं दाशरथी रामो भविष्यामि जगत्पतिः। महाभा. शान्ति पर्व **339।85।**

हनिष्ये रावणं रौद्रं सगणं लोककण्टकम्। महाभा. शान्ति प. **339।89।"**त्रेता और द्वापर के संध्यांश में मैं जगत्पति दाशरथि राम होकर लोकशत्रु रावण का संहार करूँगा। **"जन्मविष्णोरमेयस्य राक्षसेन्द्रवधप्सया।** हरिवंश वि. प. **93।6।"** **"रामलक्ष्मणशत्रुघ्नो भरतश्चैव भारत। 93।8।"** **"यत्रस्थितमिदं सर्वं प्राते लोकस्य नाशने। आदौ यस्मात्समुत्पन्नः सोऽयं विष्णुरितिस्थितः।** हरिवंश भ. प. **82।12।"** हे भारत ! अप्रमेय विष्णु का ही जन्म राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न रूप में हुआ है। प्रलयकाल में सृष्टि जहाँ विरामस्थान प्राप्त करती है तथा आदि में जहाँ इसकी उत्पत्ति होती है वही विष्णु ये राम लक्ष्मणादि हैं। **"रघोरथ कुले जातो रामनाम जनार्दनः।** हरिवंश भ. प. **82।17।"** जनार्दन् भगवान् ही रामनाम से रघुकुल में उत्पन्न हुए हैं।

"अमृतार्थे पुरा चापि देवदैत्य समागमे।दधार मन्दरं विष्णुरकूपार इति श्रुतिः।22।42।

चतुर्धा तेजसो भागं कृत्वा दशरथे गृहे।स एव रामसंज्ञो वै रावणं व्यनशत्तदा। हरिवंश वि. प.**22।44।**

विष्णना निहितः भूयः छद्मरूपेण हैहयः। हरिवंश वि.प. **48।21।**

इक्ष्वाकुल सम्भूतो रामो दाशरथिः पुरा। त्रिलोकविजयं वीरं रावणं सन्यपातयत्। हरिवंश वि. प. **48।22।"**

पूर्वकाल में अमृत के लिए दैत्यों के एकत्रित होने पर विष्णु भगवान ही कच्छपरूप से समुद्र में मन्दराचल को धारण किया था। वही विष्णु स्वतेज को चार भागों में विभक्त कर रामादि संज्ञा से विख्यात हो रावण का नाश किया तथा हैहय छद्म वेषधारी विष्णु के द्वारा मारा गया। वही विष्णु दाशरथि राम होकर त्रिलोकविजयी रावण का संहार किया।

"निःक्षत्रियमिमं लोकं कृतवानेकविंशतिः।82।16।

रघोरथकुले जातो रामो नाम जनार्दनः। सीताया च श्रियायुक्तो लक्ष्मणानुचरः कृति। हरिवंश भ. प. 82।17।"
जनार्दन भगवान् ही परशुराम होकर इक्कीस बार इस पृथ्वी को निःक्षत्रिय बनाया और वही सीता और लक्ष्मण के साथ रघुकुल में राम हुए।

"**तत्र अयोध्यापुरी चैका द्वितीया मथुरा स्मृता। मत्स्यादीनां तथा पुर्यः पुरतः सम्प्रकीर्तिता।।**
तत्रायोध्यापुरी रम्या यत्र नारायणो हरिः। रामरूपेण रमते सीतया परया सह।।
गृहीतशङ्खचक्राभ्यामुद्बाहुभ्यां विराजितः। कोदण्डबाणहस्ताभ्यामितराभ्यां तथैव च।।
आदिभूता महालक्ष्मी सीता तु विभवे मता। आविर्भावे क्षितो जाता जानकी दिव्यरूपिणी। वैकुण्ठ वर्णन पृ 84।

एक अयोध्यापुरी है, द्वितीय मथुरापुरी है और अन्यान्य की पुरी पूर्व वर्णित है। उन भगवान् की पुरियों में अयोध्यापुरी परम रमणीय है जहाँ नारायण हरि परासीता (लक्ष्मी) के साथ रामरूप से रहते हैं। चतुर्भुजी श्रीराम जी ऊपर के दोनों हाथों में शङ्ख चक्र तथा अन्य दोनों हाथों में धनुष बाण लिये सुशोभित हैं। आदिभूत महालक्ष्मी ही विभवातार में पृथ्वी पर दिव्यरूप धारिणी सीता या जानकी होती हैं।

अब **वाल्मीकि रामायण** में आये हुए - विष्णु या नारायण ही श्रीराम रूप में अवतार लिये हैं, इसके प्रमाणित करने वाले श्लोक काण्ड तथा सर्गादि सहित उद्धृत किये जाते हैं।

बालकाण्ड - सर्ग **15** -"**एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः। शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः**। वा. रा. बाल 15।16।" इसी बीच महाप्रकाशमान् शङ्ख चक्र गदा आदि आयुधों से सुशोभित पीताम्बरधारी जगत्पति विष्णु उपस्थित हुए। "**त्वां नियोक्ष्यामहे विष्णो लोकानां हितकाम्यया**। श्लो 19।" हे विष्णु ! आपको लोकहित के लिये आपको नियुक्त करना चाहता हूँ। "**विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम्**। श्लो 21।" हे विष्णु ! आप अपने उपकरणों सहित चार रूपों में हो पुत्रभाव से प्रकट होवें। "**अवध्यं दैवतैर्विष्णोः समरे जहि रावणम्**। श्लो 22।" हे विष्णु ! देवताओं से अवध्य रावण को आप समर में नाश करें। "**एवं स्तुतस्तु देवेशो विष्णुस्त्रिदशपुंगवः**। श्लो 26।" इस प्रकार देवताओं के प्रार्थना करने पर देवताओं में सर्वश्रेष्ठ देवेश विष्णु ने कहा। "**एवं दत्वा वरं देवो देवानां विष्णुरात्मवान्**। श्लो 30।"इस प्रकार देवों के देव आत्मनियामक विष्णु देवताओं को वर देकर अन्तर्ध्यान हो गये।

सर्ग 16- "**ततो नारायणो विष्णुः नियुक्तः सुरसत्तमैः**। वा. रा. बाल 16।1।" तत्पश्चात् नारायण विष्णु देवताओं द्वारा राक्षस नाशकार्य में नियुक्त हुए। "**एवमुक्ताः सुराः सर्वे प्रत्यूचुर्विष्णुमव्ययम्**। श्लो 3।" इस प्रकार सभी देवगण अव्यय विष्णु से कहा। "**इत्येतद्वचनं श्रुत्वा सुराणां विष्णुरात्मवान्**। श्लो 8।" देवताओं के इन वचनों को सुनकर आत्मनियामक विष्णु ने कहा। "**स कृत्वा निश्चयं विष्णुरामन्त्र्य च पितामहम्**। श्लो 10।" यह निश्चय कर वह विष्णु ब्रह्मा को बुलाकर आदेश दिया।

सर्ग 17 - "**पुत्रत्वं तु गते विष्णो राज्ञस्तस्य महात्मनः**। वा. रा. बाल 17।1।" विष्णु भगवान को राजा दशरथ के पुत्ररूप में अवतीर्ण हो जाने पर ब्रह्मा ने देवताओं से कहा कि "**विष्णोः सहायन् बलिनः सृजध्वं कामरूपिणः**।17।2।" विष्णु की सहायता के लिए बलवान् और यथेच्छारूपधारी प्राणियों की सृष्टि कीजिए।

सर्ग 18 - "**विष्णारर्ध महाभागं पुत्रमैक्ष्वाकुनन्दनम्**। वा. रा. बाल 18।11।" विष्णु भगवान् ल्प आधाभाग दशरथ जी के पुत्र श्री राम जी का......। "**साक्षाद् विष्णोश्चतुर्भागः सवैः समुदितो गुणैः**।18।13।" सभी गुणों से समुदित

साक्षात् विष्णु के ही चार भाग......। **"वीरौ सर्वास्त्रकुशलौ विष्णोरर्धसमन्वितौ।18।14।"** विष्णु के अर्धभाग से समुत्पन्न दोनों वीर (लक्ष्मण शत्रुघ्न) सभी अस्त्रकलाओं में निपुण हुए।

सर्ग 76- "अक्षय्यं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम्। वा. रा. बाल 76। 17।" परशुराम जी कहते हैं कि अक्षय सुरेश्वर ! मधुराक्षस का नाश करने वाले आपको मैं जानता हूँ।

अयोध्याकाण्ड -सर्ग 1- "स **हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः।अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः** ।वा. रा.अयो. 1। 7।" वह सनातन विष्णु रावण के वधेच्छुक देवताओं से प्रार्थित हो मनुष्यलोक में अवतीर्ण हुए।**सर्ग 44 -"सूर्यास्यापि भवेत् सूर्यो ह्यग्निरग्निः प्रभोः प्रभुः।श्रियः श्रीश्च भवेदग्र्या कीर्तिः कीर्त्याः क्षमाक्षमा**।वा. रा.अयो. 44। 15 ।" भगवान् श्री रामचन्द्र सूर्य का भी सूर्य,अग्नि का भी अग्नि, प्रभु का प्रभु, श्री का श्री, कीर्ति की कीर्ति और क्षमा की क्षमा हैं।**सर्ग 58 - "सर्वलोकप्रियं त्यक्त्वा सर्वलोकहिते रतम्। सर्वलोकोऽनुरज्येत कथं चानेन कर्मणा**।वा. रा.अयो. 58। 32।" सर्वलोकप्रिय राम का प्रव्राजन रूप दशरथ के सर्वलोक अहितकर कुकृत्य से कौन प्रसन्न होगा ? अर्थात् कोई नहीं।

अरण्यकाण्ड -सर्ग -1 "**शरण्यं सर्वभूतानां सुसम्मृष्टाजिरं सदा**।वा. रा.अर. 1। 3।" **"दिव्यज्ञानोपपन्नास्ते रामं दृष्टवा महर्षयः**।1। 10।" सभी प्राणियों का सुन्दर विशद प्रांगण सदृश शरण्य श्री राम जी को देखकर अवतार रहस्य के ज्ञाता महर्षिगण स्वागतार्थ उद्यत हुए। **"रक्षणीयास्त्वया शश्वद् गर्भभूतास्तपोधनाः**।1। 21।" प्रजास्वरूप तपस्वियों को सतत आप (श्री राम) रक्षा करें। **सर्ग-5** "**अक्षया नरशार्दूल मयालोका जिताश्शुभाः।ब्राह्म्याश्च नाकपृष्ठ्याश्च प्रतिगृह्णीष्व मामकान्**।वा. रा.अर. 5। 31।"हे नरशार्दूल ! मैं ब्रह्मलोक तथा स्वर्गलोक याने उभय भोगभूमि को जीतकर आपको समर्पण करता हूँ, आप स्वीकार करें। "**अहमेवाहरिष्यामि सर्वाल्लोकान् महामुने**।5। 33।"
सर्ग -6 "केवलेनात्मकार्येण प्रवेष्टव्यं मया वनम्।वा. रा.अर. 6। 22।" राक्षसों का विनाश कार्य मेरा कार्य है इसलिए मैं वन में रहूँगा। **सर्ग - 39"बलिं वा नमुचिं वापि हन्याद्धि रघुनन्दनः**।वा. रा.अर.39। 19।" बलि या नमुचि क्यों न हो किन्तु रघुनन्दन उसे हनन करेंगे। इन सभी प्रमाणों से विष्णु ही श्री राम जी और श्री लक्ष्मी ही श्री सीता जी हैं। **सर्ग - 74"चक्षुषा तव सौम्येन पूतास्मि रघुनन्दन।गमिष्याम्यक्षयान्लोकांस्त्वत्प्रसादादरिन्दम**।वा. रा.अर.74। 13।" आपके सौम्य दृष्टि प्रसाद से पवित्र हो हम सब अक्षय लोक (वैकुण्ठ) जायेंगे।

किष्किन्धा काण्ड -सर्ग -4 **"सर्वलोकस्य धर्मात्मा शरण्यः शरणं पुरा**।वा. रा.किष्कि.4।20।" पूर्व में आप अखिल लोकों के शरण्य थे। **सर्ग -15 "निवासवृक्ष साधूनां आपन्नानां परागतिः**।वा. रा.किष्कि.15।19।"साधुओं का निवास तथा आपद्ग्रस्तों की परागति (अक्षयलोकदाता) आप हैं। "**गुणानामाकरो महान्**।वा. रा.किष्कि.15।21।" कल्याणकारक गुणों के आप खजाना हैं। **सर्ग-24 "त्वमप्रमेयश्च दुरासदश्च जितेन्द्रियश्चोत्तमधार्मिकश्च।अक्षय्यकीर्तिश्च विचक्षणश्च क्षितिक्षमावान् क्षतजोपमाक्षः**।वा.रा.किष्कि.24।31।"आप अप्रमेय-दुर्ज्ञेय, जितेन्द्रिय, उत्तमधार्मिक, अक्षयकीर्ति, विचक्षण क्षमावान् तथा रक्त कमलवत् नेत्रवाले हैं।

ऐसे सर्वत्र प्रमाण भरे पड़े हैं। इतना यहाँ तो दिग्दर्शन मात्र दिया गया है। **"अहं वेदिम महात्मनं रामं सत्यपराक्रमम्। वसिष्ठोऽपि महातेजा येऽन्यं च तपसि स्थिताः**।वा.रा.बाल.19।14।" **"वृक्षे वृक्षे च पश्यामि चीरकृष्णाजिनाम्बरम्**।वा.रा.अर.39।15।" **"यथा सर्वगतः विष्णुः तथैवयं द्विजोत्तम।"**

युद्ध काण्ड सर्ग -111। **"मानुषं वपुरास्थाय विष्णुः सत्यपराक्रमः**।श्लो. 13। मनुष्य शरीर में अवतीर्ण आप सत्यपराक्रम विष्णु हैं। **"शंखचक्रगदाधरः**।श्लो. 12।" शंख चक्र और गदा को धारण करने वाले हैं।

सर्ग -117 **"भवन्नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुध प्रभुः**।श्लो. 13 ।" आप चक्र आयुध धारण करने वाले साक्षात् श्री नारायणदेव हैं। **"अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव**।श्लो. 14 ।" आप राघव अक्षर ब्रह्म, सत्य स्वरूप मध्य और अन्त में रहने वाले हैं। **"विष्वकसेनश्चतुर्भुजः**।श्लो. 14।" आप विष्वक्सेन चतुर्भुज हैं। **"विष्णुः कृष्णश्चैव**।श्लो. 15।" विष्णु एवं कृष्ण भी आप ही हैं। **"उपेन्द्रोमधुसूदनः**।श्लो. 16।" उपेन्द्र और मधुसूदन भी आप ही हैं। **"सहस्रश्रृङ्गो वेदात्मा शतशीर्षो महर्षभः। त्वं त्रयाणां हि लोकानां आदिकर्ता स्वयंप्रभुः**।श्लो.18।" आप सहस्रश्रृंगधारी वेद की आत्मा, शतशीर्ष, महान् ऋषभ एवं तीनों लोकों के आदिकर्ता स्वयं प्रभु हो।**"ओंकारपरात्परः**।श्लो. 19।" आप ॐकार स्वरूप परात्पर नारायण हो। **"दृश्यते सर्वभूतेषु गोषु च ब्राह्मणेषु च**।श्लो.20।" **"सहस्रचरणः श्रीमान् शतशीर्षः सहस्रदृक्**।श्लो.21।" गो ब्राह्मण तथा समस्त प्राणियों में सहस्रचरण तथा सहस्रमस्तकवाले दिखायी पड़ते हो। **"अन्ते पृथ्व्याः सलिले दृश्यते त्वं महोरगः**।श्लो.22।" पृथ्वी के अन्त में प्रलयकालीन जल में शेषरूप में दिखायी पड़ते हो। **"सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः**।श्लो. 27।" श्री सीता जी लक्ष्मी हैं और आप श्रीविष्णु कृष्ण एवं प्रजापति हैं। **"ये त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम्।प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह लोके परत्र च**।श्लो. 31।" पुराणपुरुषोत्तम आपके जो भक्त हैं वे अभिलषित वस्तुओं को प्राप्त करते हैं।

उत्तरकाण्ड सर्ग -27 **"विष्णोः समीपमागत्य वाक्यमेतदुवाचह। विष्णोः कथं करिष्यामि रावणं राक्षसं प्रति।** श्लो. 6-7।" इन्द्र श्रीविष्णु (राम) के प्रति यह कहा कि हे विष्णु ! महावली रावण का वधोपाय क्या करूँ। **"त्वं हि नारायणः श्रीमान् पद्मनाभः सनातनः।** श्लो. 11।" आप कमलनाभ सनातन श्रीमान् नारायण हैं। **"एवमुक्तस्तु शक्रेण देवो नारायणः प्रभुः।** श्लो. 14।"इस प्रकार इन्द्र की भक्ति सुनकर प्रभु श्री नारायण जी ने कहा। **" ना हत्वा समरे शत्रुं विष्णुः प्रतिनिवर्तते।** श्लो. 18।" श्री विष्णु भगवान् शत्रु को बिना मारे समर से नहीं लौट सकते। **"त्वं हि नारायणः श्रीमान् त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।"** आप ही (श्रीराम) स्वयं नारायण हैं, आप ही में सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित है।

सर्ग -104 **"रक्षां विधास्यन् भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान्।**वा. रा.उत्तर 104।9।" सांसारिक जीवों की रक्षा के लिए स्वयं विष्णु आप अवतीर्ण हुए हैं। **"सनाथा विष्णुना देव भवन्तु विगतज्वराः।**वा. रा.उत्तर 104।15।" विष्णु भगवान् से सभी देव सनाथ हो त्रासरहित हो जावें। **"विष्णुः मानुष विग्रहः।**।" विष्णु ही मनुष्य रूप में श्रीराम हैं।

सर्ग -109 **"रामस्य दक्षिणे पार्श्वे पद्मा श्रीः समुपाश्रिताः।**वा.रा.उत्तर 109।6।" श्रीराम के दक्षिण भाग में पद्मा श्री सीतारूप में विराजित हैं।

सर्ग -110 **"आगच्छ विष्णो भद्रं ते**।श्लो 8।" श्रीरामजी के स्वर्गारोहण काल में ब्रह्मा कहते हैं - हे विष्णु !आप आवें। **"वैष्णवीं तां महातेजो**।श्लो 10।" ये महातेजस्वी विष्णु सम्बन्धी गति को जायें। **"विवेश वैष्णवं तेजः**।श्लो 12।

भगवान् श्रीराम जी विष्णु तेज में प्रवेश कर गये। "**ततो विष्णुमयं देवं ...**। श्लो. 13। इसके पश्चात् विष्णु के तेजमय श्रीराम रूप को सभी देवता पूजने लगे। "**अथ विष्णुर्महातेजाः...**। श्लो. 16।" महातेजस्वी विष्णु। "**तत् श्रुत्वाविष्णुवचनं**। श्लो. 18।" यह विष्णु के वचन सुनकर ब्रह्मा बोले। **सर्ग -111**"**ततः प्रतिष्ठतो विष्णुः स्वर्गलोके यथापुरम्**। श्लो 2 ।" प्रजाओं को यथानुकूल लोक देकर श्री विष्णु वैकुण्ठ में जैसे पूर्व में थे चले गये।

अध्यात्म रामायण बाल काण्ड सर्ग -2 स्तुतिमय- "**शंखचक्रगदापद्मवनमाला विराजितम्**। **अ. रा. बाल 2**। 11।" "**श्रिया भूम्या च सहितं गरूड़ोपति संस्थितम्। अ. रा. बाल 2। 12।**" शङ्ख चक्र गदा पद्म और वनमाला से विभूषित श्रीदेवी और भूमि देवी के साथ गरुड़ के ऊपर विराजमान श्रीविष्णु को नमस्कार है।

वरदान वचन - "**कश्यपस्य वरो दत्तस्तपसा तोषितेन मे**। श्लो. 25। **स इदानीं दशरथो भूत्वा तिष्ठति भूतले**। श्लो. 26 । कश्यप की तपस्या से संतुष्ट होकरमैंने उनको वरदान दिया है वही इस समय दशरथ होकर पृथ्वी पर विराजित हैं। "**तस्याहं पुत्रतामेत्य कौशल्यायां शुभे दिने**। श्लो. 27। "**इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुः ब्रह्मा देवानथाब्रवीत्**। श्लो.।28।" उन्हीं दशरथ का कौशल्या द्वारा शुभ दिन में पुत्र होकर आउँगा। इतना कहकर विष्णु भगवान् गुप्त हो गये। इसके पश्चात् ब्रह्मा देवताओं से बोले। बालकाण्ड **सर्ग - 4** "**शेषस्तु लक्ष्मणो राजन् राममेवान्वपद्यत**। श्लो 17। जगदाधार शेष जी लक्ष्मण रूप में रामजी के अनुगमन किये। "**जातौ भरतशत्रुघ्नौ शंखचक्रे गदाभृतः**। श्लो 18।" गदाधारी भगवान् के शंख और चक्र भरत शत्रुघ्न रूप में भगवान के साथ हुए।

अ रा युद्धकाण्ड सर्ग -11 "**सद्यो रामस्य विष्णोः सुरवरविनुतं याति वैकुण्ठमाद्यम्**। श्लो 87।" जब जीवों को भगवान् के साथ किसी प्रकार का सम्वन्ध हो जाता है तव देवताओं से स्तुत विष्णु श्रीरामजी के आदिस्थान वैकुण्ठ में वे सभी जाते हैं।

उपरोक्त सभी प्रमाणों से श्रीविष्णु ही श्रीरामरूप में अवतीर्ण हुए ऐसा सभी मान्य ग्रन्थों में ऋषिवचन मिलते हैं। आर्षग्रन्थों के अतिरिक्त श्रीतुलसीकृत रामायण में भी ऐसे ही वचन मिलते हैं। तुलसीदास जी अपने रामायण में सामान्यतया सभी ऋषियों को महत्व देते हुए विशेषरूप से दो ही का नामोल्लेख किये हैं। "**बंदौ मुनिपदकंज रामायाण जिन निर्मयऊ**। **मानस** बा. 14।"इसी प्रकार व्यास जी के सम्वन्ध में "**व्यास आदि कवि पुंगव नाना**। मानसबा. 13।1।" इन दोनों के ग्रन्थ रामायण या पुराणादिक से श्रीराम जी विष्णु सिद्ध होते हैं और लक्ष्मी ही श्री जानकी।

अव एतत्सम्बन्धी तुलसीकृत रामायण से कुछ उद्धरण दिये जाते हैं। यथा - "**एवमस्तु कहि रमानिवासा**। मानसअर. 11।1।" "**सो राम रमानिवास**। मानसअर. 31। छंद 4।" "**प्रणमामि निरन्तर श्रीरमणम्**। मानस उ. 13।10।" "**राम रमेश नित्य भजामहे**। मानसउ. 12। छदं 4।" "**सुजान राम रमापति**। मानस लं. 120। छंद 1।""**छविधाम नमामि रमासहितम**। मानसलं. 110।6।""**रमानाथ जहँ राजा**। मानस उ. 29।" इस प्रकार देवस्तुति प्रकरण में श्रीतुलसीदास जी भगवान् के सभी गुणादि विशेषणों का नाम लेते हुए किसी अन्य विशेष्य को न लेकर केवल एक विशेषण में यों कहते हैं - "**सिन्धु सुता प्रिय कन्ता**। मानस बाल 185। छंद 1।" याने हे विष्णु ! सिन्धुसुता (लक्ष्मी) के प्रिय कान्त (पति) विष्णु आप हम सबों के कल्याणार्थ अवतार लें तथा नारद विष्णु को ही शाप दिये थे, अतः अवतार के पूर्व विष्णु कहते हैं "**नारद वचन सत्य सब करिहौं**। । मानसबा. 186।3।" अवतारकालिक दृश्य के वर्णन में "**प्रकट भये**

श्रीकन्ता। मानसबा. 191।छं।" श्रीकान्त विष्णु प्रकट हुए। "**निज आयुध भुजचारी।** मानसबा. 191।छं।" शंख-चक्र-गदा और पद्म इन आयुधों को लिये हुए श्रीविष्णु रामरूप में प्रकट हुए।

"**विप्र चरण देखत मनलोभा।** मानसबा. 198।3।" विप्र भृगु जी के चरणचिह्नत श्रीविष्णु ही रामरूप में अवतरित हुए, अतः यह चिह्न भी विद्यमान था। "**जेहि पद सुर सरिता युगल पुनीता प्रकट भई शिवशीश धरी।सोई पदपंकज जेहि पूजत अज मम शिर धरेउ कृपालु हरि।** मानसबा. 210।छं 4।"वही विष्णु जिनके पद से गंगा प्रकट हुई थी, जिसको ब्रह्मा पूजते हैं वही पद आज मेरे मस्तक पर है। परशुराम अपना सन्देह दूरीकरण में प्रगट कहते हैं "**राम रमापति कर धनु लेहु।खैंचहु चाँप मिटै सन्देहु।** मानसबा. 283।4।"

"**श्रुतिसेतुपालक राम तुम जगदीस माया जानकी...।** मानसअयो. 125।छं 1।" "**पयपयोधि तजि अवध बिहाई।जहँ रह राम लखन सिय छाई।** मानसअयो. 138।3।" "**सुनु सुरेश रघुवीर स्वभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ।** मानसअयो. 217।2। "**जो अपराध भक्त कर करई। राम रोष पावक सो जरई। ......।यह महिमा जानहि दुरवासा।** मानसअयो.217।3।" विष्णु के ही चक्र की महिमा दुर्वासा जानते हैं।"**नमामि इन्दिरापतिं......।। शचीपति प्रियानुजम्।** मानसअर. 3।2।" इन्दिरापति एवं शचीपति (इन्द्र) के छोटे भाई उपेन्द्र श्रीविष्णु ही हैं। "**राम कृपा वैकुण्ठ सिधारा।** मानसअर. 8।1।" "**भूप रूप जब राम दुरावा।हृदय चतुर्भुज रूप दिखावा।** मानसअर. 9।9।""**श्रीसहित कृपानिकेत अनुज समेत मन पद लाइहौं।** मानसअर. 25 छं।" "**श्याम गात विशाल भुज चारी।** मानसअर. 31।1।" "**सो राम रमा निवास।** मानसअर. 31 छं 4।" यह राम लक्ष्मीनिवास श्रीविष्णु हैं। "**जो बली बांधिसहसभुजमारा।सो अवतरेउ हरण महि भारा।** मानस लं. 5।4।" **हिरण्याक्ष भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान। जो मारेउ सो अवतरेउ कृपासिन्धु भगवान।** मानस लं. 48।" इन राक्षसों को मारने वाले श्रीविष्णु ही हैं। "**मीन कमठ सूकर नरहरि।बामन परशुराम बपुधरि।** मानस लं. 109।4।""**छविधाम नमामि रमासहितम्।।**" "**हर्षि देहु श्रीरङ्ग।** मानस उ. 14।" "**जय इन्दिरा रमण।** मानस उ.33।2।" लक्ष्मीरमण श्रीविष्णु हैं। "**फणीन्द्रसेव्यमनिशम्।** मानस सु. मंगलाचरण।" फणीन्द्र शेष सेवित श्रीविष्णु हैं। "**विप्रपादाब्जचिह्नम्।** मानस उ. मंगलाचरण।1।" विप्र (भृगु) के पदचिह्नयुत श्रीविष्णु हैं। "**धरे जो विविधदेह सुरत्राता।** मानस सु. 20।4।" "**मोर साप करि अंगीकारा।सहत राम नाना दुःख भारा।** मानस अर.40।3।" नारद जी श्रीविष्णु को ही शाप दिये थे। शाप ही से दुःखित श्री राम जी को देख कर नारद स्वयं भी दुःखी हो रहे हैं।

"**उर श्रीवत्स रूचिर वनमाला।** मानस बा. 146।3।" भृगुपदचिह्न को ही श्रीवत्स कहते हैं। "**श्रीवत्सपदनामानं पादचिह्नो हि जायते।**" यह विष्णु होने का चिह्न हैयाने रामजी श्रीविष्णु हैं। "**उपजहिं जासु अंश ते नाना।शंभु विरञ्चि विष्णु भगवाना।** मानस बा. 143।3। श्रीरामजी विष्णु भगवान हैं याने विष्णु के अवतार हैं। जिनके अंश से नाना (अनेक)शंभु (महादेव) विरञ्चि (ब्रह्मा) उत्पन्न होते हैं। जो उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है। किन्तु इस चौपाई के अन्वय में हेरफेर कर कुछ लोग भ्रमवश रामजी से ही शंभु ब्रह्मा तथा विष्णु हुआ करते हैं - ऐसा अर्थ भी करते हैं। जो नितान्त अनुचित है क्योंकि इसके अनुकूल कोई भी प्रमाण नहीं मिलता है। उपरोक्त चौपाई में भगवान् शब्द भी विष्णु का बोधक है। विष्णु पुराण में कहा है "**मैत्रेय भगवच्छब्दः वासुदेवेन अन्यगः।।**" वह भगवत् शब्द का अर्थ यह है - "**ज्ञानशक्तिवलंवीर्यं तेजश्च्व यशसश्रियः। भगवच्छब्दवाच्यानि विनाहेयैर्गुणादिभिः।।**" अतः यह

सिद्ध होता है कि उपरोक्त सभी गुणसम्पन्न विष्णु से ही ब्रह्मा रुद्रादिक होते हैं। **"ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्य स्ययशसश्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भगइतीरणः।।"** यह श्लोक भी उसीके रूपान्तर में मिलता है।
इसीप्रकार **"बाम भाग शोभित अनुकूला।आदिशक्ति छबि निधि जगमूला।**मानस बा. 147।1।" **"उपजहिं जासु अंशगुणखानी।अगनित उमा रमा ब्रह्माणी।।**बा. 147।2।"जगत के मूल (उत्पादक) शोभा की निधि आदि शक्ति लक्ष्मी भगवान् के वामभाग में अनुकूल शोभित (ब्रह्मा) हैं। वह रमा (लक्ष्मी) अगनित गुण की खानि हैं जिनके अंश से ब्रह्माणी तथा उमा हुआ करती हैं। **"रामवामदिशि सीता सोई।**बा. 147।2।" राम के वामभाग में वही (लक्ष्मी) सीता हैं। **"रामरूपे भवेत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि।।"** लक्ष्मी ही रामावतार में सीता और कृष्णावतार में रुक्मिणी हुआ करती हैं।हनुमन्नाटकमें कहा है **"जानामि रामं मधुसूदनस्य।**सेतुबन्धनं सप्तमोऽङ्कः श्लो. 11।" वही विष्णु (मधुसूदन)राम को मैं जानता हूँ।

रामायण में क्या है ।

भगवान् नारायण के अनन्त गुण, अनन्त रूप, अनन्त वैभव, अनन्त अवतार तथा अनन्त विभूतियाँ हैं। अतः इनका अनन्त नाम भी हुआ और अनन्त चरित्र भी है। भगवान् नारायण के अनन्तावतारों में एक रामावतार भी है। श्रीरामचन्द्रजी बहुत बार अवतार लिये, उन अवतारों में जो जो चरित्र किये हैं उनमें भी कुछ अन्तर कल्पभेद से मालूम पड़ता है। जैसे कहीं विवाह पश्चात् परशुराम जी से मिलन, तो कभी पूर्व ही। अहल्या का रहना कहीं जनकपुर में तो कहीं बक्सर इत्यादि। भगवान् के चरित्रों को ब्रह्मा याद रखते हुए प्रसार किया करते हैं। इन्हीं क्रमों में श्रीराम चरित्र को ब्रह्मा महादेव से एवं नारद से कहा। नारद महर्षि वाल्मीकि से कहा, वाल्मीकि जी यह सुन्दर रामचरित्र को (जो मूलरूप में रामायण के प्रथम काण्ड के केवल एक सर्ग में है) चौबीस हजार श्लोकों में बनाये और समयानुकूल लव और कुश को पढ़ाये। और ये दोनों भाई रामचरित्र को गानविद्या के अनुसार वीणा बजाते हुए मुनिमण्डिलियों में घूम- घूम कर प्रचार किये। कहा भी है **"ऋषिणाञ्च द्विजातीनां साधूनाञ्च समागमे। यथोपदेशं तत्त्वज्ञौ जगतुः सुसमाहितौ।**वा. रा.बाल 4। 13।" यह ताल स्वर से युक्त रामायण (श्रीरामचरित्र) को सुनकर श्रोतालोग कहते हैं। **"चिरनिर्वृत्तमप्येतत् प्रत्यक्षमिव दर्शितम्।**वा. रा.बाल 4। 18।" यह रामजन्म, विवाह तथा रावणवधादिक भूतकालिक भी प्रत्यक्ष वर्तमान ऐसा प्रतीत होता है।

रामायण शब्द की व्युत्पत्ति बहुत प्रकार से की जाती है तथा उसका अर्थ भी भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है। यथा**"राम ईयते प्राप्यते अनेन"** अर्थात् राम जिसके द्वारा मिल जायें वह साधन प्रेम भी है, इसको रामायण कह सकते हैं। अथवा **"रामं अयनं यस्य"**बहुब्रीहि द्वारा जिन सबों के आधारभूत राम हैं उन सबों का बोध रामायण द्वारा होता है। **"रामस्य अयनं"** तत्पुरुष समास के द्वारा राम जहाँ प्राप्त हों उसको रामायण कहेंगे। याने राम जी कौन हैं ? कैसे हैं, यह देखना या जानना चाहें तो रामायण पढ़े। जैसे किसी को खोजने के लिए सर्वप्रथम उसके घर का ही अन्वेषण किया जाता है। इसी प्रकार रामजी की प्राप्ति के लिए प्रेमपूर्वक रामायण का अध्ययन साधन है। यों तो सामान्य रूप से रामायण द्वारा लोग रामचरित्र को ही समझते हैं किन्तु रामजी श्रीनिवास हैं। अतः

बहुव्रीहि समास के द्वारा रामायण शब्द से लक्ष्मी (सीता) चरित्र प्रतिपादक अर्थबोध होता है। क्योंकि "**सीतायाः चरितं महत्**।वा. रा.बाल 4। 7।" अर्थात् रामायण में सीता का ही महत् चरित्र चित्रित है।

इस विषय में समझना चाहिए कि एक बार जब लव कुश द्वारा श्रीराम जी उक्त रामायण को गाते हुए सुना तो उस गान को पुनः-पुन सुनने की इच्छा से लव कुश को प्रेरित करते रहे और उत्कण्ठापूर्वक सुनते रहे और यहाँ तक सुनने में आसक्त हुए कि "**स चापि रामः परिषद्गतः शनैर्बुभूषयासक्तमना बभूव**।वा. रा.बाल 4। 36।" अर्थात् धीरे धीरे अपने स्थान से खिसक कर उन दोनों गायकों के पास चले गये और बोले कि "**ममापि तद्भूतिकरं प्रचक्षते महानुभावं चरितं निबोधत**।वा.रा.बाल 4। 35।" (**ममापि**) मुझ प्रियविरही का भी (**भूतिकरं**) धौर्यप्रद यह कथा है - इसलिए (**महानुभावं चरितं**) हे महानुभाव ! कृपा कर सीता चरित्र को पुनः कहिये। यदि रामायण सीताचरित्र प्रतिपादक नहीं होता मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्री राम अपना चरित्र अपने ही क्यों सुनते जबकि अपनी प्रशंसा सुनना अपने से अपनी निन्दा के समान है। इससे सिद्ध होता है कि रामायण सीताचरित्र का ही प्रतिपादक है। श्रीगुणरत्नकोष में भी यही लिखा है कि "**श्रीमद्रामायणमपि परंप्राणिति त्वच्चरित्र**।श्लोक14।"हे लक्ष्मी सीते ! वाल्मीकि रामायण आपके चरित्र की रक्षा करती हैयाने गान करती है अर्थात् जबतक यह रामायण रहेगा तब तक आपका चरित्र संसार में रहेगा।

"**प्रातः द्यूतप्रसंगेन मध्याह्ने स्त्रीप्रसंगतः।रात्रौ चोरप्रसंगेन कालो गच्छति धीमताम्**।।" प्रातः काल में द्यूतप्रसंग (**भारत-कृष्ण-प्रसंग**) में, मध्याह्न में स्त्रीप्रसंग (**रामायण सीताचरित्र कथन**) में और रात्रि में चोरप्रसंग (**श्रीमद्भागवत् कथन**) में बुद्धिमानों का समय व्यतीत होता है। '**सीतायाः चरितं**' में अनेकों भाव हैं। ये सब गुण श्रीराम जी की अपेक्षा सीता जी में विशेष रूप से पाये जाते हैं इसलिये महत् शब्द दिया गया है। भगवान् की अपेक्षा लक्ष्मी जी में दया एवं क्षमागुण अत्यधिक मात्रा में है। इसीलिये सीता लंका में गयीं कि रावण को उपदेश द्वारा भगवान् की शरणागति कराकर उसके महान् अपराध को क्षमा करवा दें। लंका की राक्षसियाँ भी सीता जी के साथ महान् अपराध की थीं। जिसके कारण जब हनुमान् उन सबों का चित्रवध करना चाहते थे तो उन राक्षसियों को विना शरणागत हुए ही बचा लिया और कहा कि "**कश्चिन्नापराध्यति**।वा.रा.युद्ध 116। 44।" इन सबों का कोई अपराध नहीं है। यह दया और क्षमा गुण का उदाहरण है। जयन्त को भी महान् अपराधी होते हुए बचा लिया।

एक ओर भगवान् को अवतरित होने के लिये कश्यप घनघोर तपस्या किये, पृथिवी तथा देवगणों की स्तुति, दशरथ का अश्वमेध तथा पुत्रेष्टि यज्ञ करना, दोनों समय में देवताओं की शरणागति करना इत्यादि अनेक यज्ञों द्वारा भगवान् का अवतार हुआ। दूसरी ओर सीता के अवतार में कोई हेतु नहीं। बिना कारण ही कुयोनी कठोर धरती से निकल कर अनेक जीवों को संसार से उद्धार किया, यह निर्हेतुक करुणा केवल मातृगुण की विशेषता है।भगवान् ने तो राक्षसी शूर्पणखा का प्रेम करने पर भी नाक कान काट लिया। ऐसे अनेकों उदाहरणों द्वारा रामजी की अपेक्षा सीता जी में विशेषता पायी जाती है। ऐसा क्यों न हो "**पितुः शतगुणं माता गौरवेणातिरिच्यते**।"याने माता पिता की अपेक्षा सौगुनी बड़ी होती है। इसीलिए प्रधानतया सीता का ही चरित्र प्रतिपादक रामायण माना गया है।

अथवा "**रामस्य अयनं (भक्तजनः) तस्य चरितं रामायणम्** याने रामजी अपने भक्तों के हृदय में रहते हैं और उन्हीं भावों का यह चरित्र रामायण है। यथा मानस में,

"**निदरहिं सिन्धु सरित सर बारी।रूप बिन्दु जल होहिं सुखारी।।**
तिनके हृदय सदन सुखदायक।बसहु लखन सिय सह रघुनायक। अयो. 127।4।
यश तुम्हार मानस विमल हंसिनी जीहा जासु । मुक्ताहल गुणगण चुगहीं वसहुं राम उर तासु।मानस अयो. 128।
चरण राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहुँ तिनके मनमाँही। अयो. 128।3।
सबकर माँगही एक फल राम चरन रति होउ।तिनके मन मन्दिर बसहु सिय रघुनन्दन्द दोउ।मानस अयो. 129।
जिनके कपट दंभ नहीं माया। तिनके हृदय बसहु रघुराया। अयो. 129।1।
तुमहींछाड़ी गति दूसर नाहीं। राम बसहुँ तिनके मन माँही। अयो. 129।3।
जिनहीं राम तुम प्राणपियारे। तिनके मन शुभ सदन तुम्हारे। अयो. 129।4।
स्वामी सखा पितु मातु गुरु जिनके सब तुम तात। तिनके मनमन्दिर बसहु सीय सहित दोउ भ्रात।मानस अयो. 130।
नीति निपुण जिनके जगलीका। घर तुम्हार तिनके मन नीका । अयो. 130।1।
रामभक्त प्रिय लागहि जेही। तेही उर बसहु सहित बैदेही। अयो. 130।2।
सब तजि तुम्हहीं रहे लव लाई। तिनके हृदयबसहु रघुराई।अयो. 130।3।
मन क्रम वचन जो राउर चेरा।राम करहुँ तिनके मन डेरा।अयो. 130।4।
जाही न चाहिये कबहुँ कछु तुम सन सहज सनेह।बसहुं निरन्तर तासु उर सो राउर निज गेह।मानस अयो. 131।

भक्तों के यही सब लक्षण बताये गये हैं और ऐसे ही भक्तों के हृदय में भगवान् मूर्तिमान होकर रहते हैं तथा उनकी प्रशंसा भगवान गाते रहते हैं क्योंकि ऐसे भक्त अति प्रिय होते हैं - "**तुम सारिखे सन्त प्रिय मोरे।धरेउ देह नहीं आन निहोरे**।सु. 47।4।" "**भक्तचरित करि नेम तुलसी जे सादर सुनहिं।सीय राम पद प्रेम अवसि होई भवरस विरति**।अयो. 326।" "**जग जपु राम राम जपु जेहि**।अयो. 217।4।" भक्तवर भरत जी के नाम को भगवान् स्वयं ही जपा करते हैं तो औरों की बात ही क्या रही और इससे बढ़कर भक्तों का महत्व ही क्या हो सकता है। इसी तरह के भक्त लखनलाल भी हैं "**रामस्य दक्षिण बाहुः।**।" लखन जी राम जी के दाहिना हाथ हैं।

"**सुमित्रा गच्छ गच्छेति**।वा. रा. अयो.40।8।" "**सृष्टस्त्वं वनवासाय**।वा. रा. अयो.40।5।""**रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजं**।वा. रा. अयो. 40।9।" सुमित्रा जी लक्ष्मण जी से कहती हैं - मैंने तुम्हें वन में राम जी की सेवा करने के लिये उत्पन्न किया है। राम को पिता और जानकी को माता समझो। क्या और भी कहीं ऐसी माता हो सकती हैं ? ऐसे ही भक्तवर श्री राम जी के अयन हैं। शत्रुघ्न की कोटि और उच्च है "**शत्रुघ्नो नित्यशत्रुघ्नः।**वा. रा.अयो. 1।1।" याने शत्रुघ्न नित्य शत्रुओं का नाश करने वाले हैं। याने जन्म मरणादि से मुक्त करा देने वाले हैं। सुमन्त जी भी इसी प्रकार इसी प्रकार के भक्तों में से हैं। "**भये विकल जनु फणिमनिहीना।नयन न सूझ सुनै नहीं काना**।मानस अयो. 98।2।"सुमन्त जी की वही दशा हुई जो मणि के बिना मनियारे साँप की होती है। इनकी सभी इन्द्रियाँ शून्य हो गयीं। यथा- "**धिक् जीवन रघुवीर विहीना**। अयो.143।2।""**राम राम सिय लखन पुकारी। परेऊ धरणितल ब्याकुल भारी**। अयो.141।4।" **तृण चरहिं न पियहिं जल मोचत लोचन बारी**। अयो. 142।" "**जो कह राम लखन वैदेही। हंकरि हंकरि हिय हेरहिं तेही**। अयो.142।4।" ऐसे वाल्मीकि, भरद्वाज, अत्रि, अनुसूइया, सरभंग, सुतीक्षण, कुम्भज, जटायु, शवरी, हनुमान, सुग्रीव, विभीषण, अंगद, मनु, शतरूपा इत्यादि भक्तों के हृदय में ही महर्षि

वाल्मीकि जी ने श्री राम जी के रहने का उपयुक्त स्थान बताया है। अतः ये सब राम के अयन हैं और श्री राम जी भी वही कहते हैं "**अस सज्जन मम उर वस कैसे।लोभी हृदय बसत धन जैसे**। सु. 47।4।" अर्थात् ऐसे भक्तों को श्री राम जी अपने हृदय में हमेशा रखते हैं। यह हुआ "**रामं अयनं यस्य**" बहुब्रीहि समास का अभिप्राय। इससे यह सिद्ध होता है कि रामजी के हृदय में भक्त और भक्त के हृदय में रामजी सदा बास करते हैं। अतः रामायण का अर्थ भक्त और भगवान दोनों का हृदय हुआ।

भक्त सदा भगवान् का गुणगान करते रहते हैं और भगवान् भक्तों के गुणगान करते रहते हैं। यथा - "**यदा विष्णुः स्वयं वक्ता लक्ष्मीश्च श्रवणे रता। यदा लक्ष्मी भवेद्वक्त्री विष्णुश्च श्रवणे रता।**" जब भगवान् भक्त का गुणगान करते हैं तो लक्ष्मी जी सुनती हैं और जब लक्ष्मी जी भक्त का गुणगान करती हैं तो भगवान् सुनते हैं। इस प्रकार भक्त और भगवान् का समय व्यतीत होता है। इसी को कालक्षेप कहते हैं। यहाँ यह नहीं कि ये दोनों परस्पर अपनी अपनी कथा एक दूसरे को सुनाते हैं और सुनते हैं क्योंकि यह शिष्टता के प्रतिकूल है। वल्कि स्पष्ट यह झलकता है कि वे लोग ध्रुव प्रह्लादिक की कथा कहते और सुनते हैं।

"**तात इक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु।।**" "**कहहिं पुरातन कथा पुरानी।सुनहिं लखन सिय अति सुख मानी।**मानसअयो. 140।1।" भाव यह है कि रामायण शब्द से केवल रामचरित्र ही नहीं वल्कि आदि में तुलसीदास जी कहे हैं - "**सीतारामगुणग्राम**।मानस बाल मंगलाचरण।" सीता और राम दोनों के गुणसमूहों का निवासस्थान यह रामायण है। इसमें प्रधान सीताचरित्र रहने के कारण से ही सीता का पूर्व प्रयोग किया गया है। रामायण रूपी वृहत् मंजूषा में भक्तचरित्र रत्न भरा हुआ है अर्थात् उक्त मंजूषा को जब खोलेंगे तब भरत सीतादिक का चरित्ररत्न उसमें मिलेगा। मानसकार भी इस मानसरोवर में जलस्थान में राम सीता को रखे हैं। "**राम सीय यश सलिल सुधा सम**।ानसबाल 36।2।" इस रामायण में राम और सीता का यश ही सुधा के समान सलिल (जल) है। अमृतपान करने से जैसे शरीर अमर हो जाता है उसी प्रकार यह राम और सीता के यशस्मरण से जीव अमर अर्थात् जन्म - मरण से रहित हो जाता है।याने नित्यलोक में जाकर नित्य शुद्ध अप्राकृतिक देह धारण करता है। यदि ऐसा नहीं हुआ तो "**अनजीवित सम चौदह प्राणी**।लंका 30।2।" याने मरे हुए के तुल्य हैं। राम और सीता परस्पर भिन्न होते हुए भी अभिन्न हैं तो इन दोनों का यश एवं गुण भी अभिन्न है जो रामायण में सर्वत्र पाया जाता है। इसीलिए वाल्मीकि ने "**सीतायाश्चरितं महत्**" लिखा है।

द्वयमन्त्र ः-(**श्रीमन्नारायण चरणौ शरणं प्रपद्ये। श्रीमते नारायणाय नमः।**)

रामायण से द्वयमन्त्र भी व्यक्त होता है। यथा - बालकाण्ड में लक्ष्मीप्राप्ति। अतः '**श्रीमत्**' का अर्थ जानना चाहिए। अयोध्या काण्ड में भगवान् के गुणवर्णन से '**नारायण**' पद का अर्थ जानना चाहिए। अरण्य काण्ड में "**ते तं सोममिवोद्यन्तम्**।" याने आप चन्द्रमा के समान हैं, इस प्रकार भगवान् के विग्रहवर्णन से '**चरणौ**' शब्द का अर्थ सिद्ध होता है। किष्किन्धा एवं सुन्दर काण्ड से '**शरण**' शब्दार्थ जानना चाहिए।

"**निवासवृक्षः साधूनामापन्नानाम परां गतिः। आर्तानां संश्रयश्चैव यशसचैकभाजनः।**
अन्तरेणाञ्जलिं बध्वा लक्ष्मणस्य प्रसादनात् ।प्रसादयस्व त्वञ्चैनं शरणागतवत्सलम्।।

लंका काण्ड से प्रपद्ये शब्दार्थ सिद्ध होता है - "**आजगाम मुहूर्तेन यत्र रामः सलक्षणः।।**" उत्तर काण्ड में मुक्तिफल का वर्णन होने से द्वयमन्त्र का उत्तरार्ध का अर्थ सिद्ध होता है। इस प्रकार अर्थबल से रामायण द्वारा द्वय मन्त्रार्थ व्यक्त होता है। "**त्वं गतिः परमो देव सर्वेषां नः परंतपः।**"आप सभी देवताओं की परमगति हो। इससे शरण्य गुण झलकता है। "**देवगन्धर्व यक्षाश्च ततस्त्वां शरणं गताः।**"सभी देवताओं ने भगवान् की शरणागति की। "**स भ्रातुश्चरणौ गाढं निपीड्य रघुनन्दनः सीतामुवाचातियशा राघवञ्च महाव्रतम्।**वा. रा.अयो. 31।2।" लक्ष्मण श्रीराम जी का चरण पकड़ कर सीता जी से कहते हैं। इससे पुरुषकारयुक्त शरणागति सिद्ध होती है। "**शेष्ये पुरस्ताच्छालाया।**वा. रा.अयो. 111।14। "**यावन्मे न प्रसीदति।।**वा. रा.अयो. 111।13।" भरत जी पर्णशाला में सो रहे कि जब तक श्रीराम जी नहीं होंगे तब तक मैं नहीं उठूँगा। "**ते वयं भवता रक्ष्या भवद्विषयवासिनः। नगरस्थो वनस्थो वा त्वन्नो राजा जनेश्वरः।।**" दण्डकारण्य वासियों ने कहा कि हम सब आपके रक्ष्य हैं, आप चाहे वन में रहें या ग्राम में, हम सबों के शरण्य हैं, यह भी शरणागति ही है।

सपित्रा च परित्यक्तः सुरैश्च समहर्षिभिः।त्रींल्लोकान् सपरिक्रम्य तमेव शरणं गतः।।

स तं निपतितं भूमौ शरण्यः शरणागतः। वधार्हमपि काकुत्स्थः कृपया परिपालयत्।वा. रा.सु. 38।33-35।" जयन्त को पितृ, देवता,महर्षि एवं तीनों लोकों के कोई भी जब रक्षा नहीं कर सका तो घूमते घूमते भगवान् भगवान् के ही शरण में आया, तो श्री जानकी ही अपराध क्षमा करा उसकी रक्षा की। "**कृतापराधस्य हि ते नान्यत्पश्याम्यहं क्षमम्। अन्तरेणाञ्जलिं बद्ध्वा लक्ष्मणस्य प्रसादनात्।।**"सुग्रीव अञ्जलिबद्ध हो लक्ष्मण को मनाया है। अतः इसी प्रकार अञ्जलिबद्ध हो शरणागति करनी चाहिए ऐसा समझना चाहिए।

सोऽहं परुषितस्तेन दासवच्चावमानितः। त्यक्त्वा पुत्राँश्च दाराँश्च राघवं शरणं गतः।।विभीषण रावण द्वारा तिरस्कृत होने के कारण पुत्रदारादि सबों को छोड़ कर भगवान् के शरण में गये। इसका भाव यह है कि शरीरसम्बन्धि सर्वस्व छोड़कर भगवान् की शरणागति करनी चाहिए।

"**अभियाचमानं वैदेहीमेतद्धि मम रोचते।**सु. 27।41। **राघवाद्धि भयं घोरं राक्षसानामुपस्थितः।**वा. रा.सु. 27।44।" त्रिजटा कहती है कि श्रीरामजी से राक्षसों का नाश होने का भय है। अतः हम सीता की शरणागति करें। अर्थात् अन्य द्वारा भी की करायी शरणागति फलवती होती है।**अहं सर्वं करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्चते।**वा. रा.अयो. 31।27। लक्ष्मण जी कहते हैं कि मैं सब अवस्थाओं में आपका कैंकर्य करूँगा। इस प्रकार सर्वत्र शरणागति सिद्ध होती है। "**अहमस्यावरो भ्राता गुणैर्दास्यमुपागतः।कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं नेह विद्यते।**वा. रा.अयो. 31।24।" यह लक्ष्मण श्री रामजी से कह कर शेषत्व सिद्ध कर दिखाते हैं। "**विललाप सभामध्ये जगर्हे च पुरोहितम्।**82।10। **राज्यं चाहञ्च रामस्य धर्मत्वं वक्तुमर्हसि।**वा.रा.अयो. 82।12।" भरत जी सभा में रोते हुए तथा वशिष्ठ जी को फटकारते हुए कहते हैं मैं तथा यह राज्य सब रामजी का है। इससे परतन्त्रता सिद्ध होता है। "**गच्छता मातुलकुले भरतेन ततो अनघ। शत्रुघ्नो नित्यशत्रुघ्नः नीतः प्रीतिपुरस्कृतः।**वा. रा. अयो.1।1।" शत्रुघ्न जी सदा भरत जी की सेवा में लगे रहते थे। इसीसे उनके साथ ममहर में भी गये। इससे भगवत्सेवा तथा परतन्त्रता सिद्ध होता है।

रामायण द्वारा अर्थपञ्चक

श्री राम जी के व्यवहार से **परस्वरूप**। लक्ष्मण के व्यवहार से **स्व स्वरूप**।शरणागति वर्णन से **उपाय स्वरूप**। विभीषणादि के कैंकर्य से **फलस्वरूप**। रावण के विरोधादि से **विरोधीस्वरूप**। इस प्रकार अर्थपञ्चक का ज्ञान होता है।

अनन्याकिञ्चनता

रावण की देवगण रक्षा नहीं कर सके। दशरथ जी पुत्र की रक्षा नहीं किये। जयन्त को माता पिता भी नहीं बचा सके। विभीषण की भाई पुत्रादि रक्षा नहीं कर सके। इससे केवल एक भगवान ही रक्षक हैं यह सिद्ध होता है। "**एकैकमक्षरं पुसां महापातक नाशनम्**।रामरक्षा स्तोत्र।"रामायण का एक एक अक्षर भी महान् पातकों का नाश करता है। इसके गान तथा स्मरण से सबों का कल्याण होता है। "**श्रृण्वन् रामकथानादं को न याति परां गतिम्**।।"यह रामायण वेद का उपवृहंण (व्याख्या) है। "**वेद वेद्ये परे पुंसी जाते दशरथात्मजे। वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षात् रामायणात्मना**।अगस्त्य संहिता।" परमात्मा की शरणागति के समय पुरुषकार की परमावश्यकता होती है। इसके बिना कल्याण नहीं होता है। जैसे किसी पुरुषाकार के बिना शूर्पनखा भगवान् में प्रेम की तो नाककानहीन हुई और पुरुषकारपूर्वक जयन्त ऐसे अपराधी को भी कल्याण हुआ है। "**दीने दयापरे पारतंत्र्यानन्यार्हते सति**।।" पुरुषकारी में तीन गुण रहना आवश्यक होता है - **1**।दया। **2**।पारतंत्र्य। **3**।अनन्यार्हता। ये तीनों गुण लक्ष्मी में पाया जाता है, यह रामायण द्वारा झलकता है।

"**पंचवट्यां महालक्ष्म्या आद्यविश्लेष ईरितः।ततोऽसुरपुरीं गत्वा स्वकृपा प्रकटी कृता**।।" लक्ष्मी पंचवटी से लंका जाकर दयागुण का प्रकाश किया है। त्रिजटा के स्वप्न सुन डरी हुई राक्षसियों को सीता जी कहती हैं - "**भवेयं शरणं हि वः**।वा. रा. सु. **58**।**92**।" "**कार्यं करुणमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति**।वा. रा. लंका**116**।**44**।"

गर्भावस्था में सीता जी को राम जी पूछते हैं "**किमिच्छिसि सकामत्वं ब्रूहि सर्व वरानने**।वा. रा. उ. **42**।**32**।" हे सीते ! तुम इस अवस्था में क्या चाहती हो ?तब सीता ने **कहा** "**तपोवनानि पुण्यानि द्रष्टुमिच्छसि राघव। गंगातीरनिविष्टानि ऋषीणां पुण्यकर्मणाम्**।**42**।**33**। **फलमूलाशिनां वीर पादमूलेषु वर्तितुम्। एष मे परमः कामो यन्मूलफलभोजिषु**।**42**।**34**। **अप्येकरात्रकाकुत्स्थ वसेयं पुण्यकीर्तिषु**।वा. रा. उ. **42**।**35**।"स्वामिन् ! तपस्वियों की तपोभूमि को मैं देखना चाहती हूँ।याने वन के फल मूल खाकर एवं वृक्ष के नीचे गंगाकिनारे जिस पवित्रभूमि में ऋषि लोग रहते हैं वहीं इस अवस्था में वास करना चाहती हूँ। यदि अधिक नहीं तो एक रात्रि भी वहाँ रह जाऊँ। इससे परतन्त्रता गुण विकसित होता है। यह दूसरा विश्लेष है। "**नैमिषारण्यमध्ये तु योऽपरो विश्लेष उच्यते। सोऽनन्यार्हत्वरूपस्य स्वगुणस्य प्रकाशकः**।।यह तीसरा विश्लेष है जो नैमिषारण्य के प्रकरण से जाना जाता है। "**यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये ।तथापि मे माधवी देवी विवरं दातुर्महति**।**14**। **भूतलादुत्थितं दिव्यं सिंहासनमनुत्तमम्**।**17**।**तस्मिंस्तु धरणीदेवी बाहुभ्यां गृह्य मैथिलीम्। स्वागते नाभिनन्द्यैनामासने चोपवेशयत्**।**19**।वा. रा. उ. **97**।**14** से **19**।" सीता जी संकोच में आकर कहीं कि - यदि मैं श्रीराम जी के सिवा अन्य किसी को कभी मन से भी चिन्तन नहीं किया हूँ तो हे माधवी, पृथ्वी देवी ! तुम मुझे स्थान दो। यह सुनकर पृथ्वी देवी दिव्य सिंहासन पर बैठकर आयीं और श्री सीता जी को स्वागतपूर्वक उसी पर बैठाकर ले गयीं। इससे अनन्यार्हता सिद्ध होता है।

"देव्याः संश्लेष विश्लेष कालयोरुभयोरपि। पुरुषकारता शुद्धा भाषते कार्यकारिणी।।" श्री लक्ष्मी संश्लेष और विश्लेष दोनों अवस्थाओं में पुरुषकार ही किया करती हैं एवं सतत जीवों के कल्याणार्थ ही चिन्तित रहती हैं यह मातृगुण है और इसी गुण का प्रतिपादन श्रीरामायण करता है।

"इतिहासप्रधानेन श्रीमद्रामायणेन च। कारागृह निवासिन्या सीतायाः वैभवः स्मृतः।।" इतिहास में प्रधान श्रीरामायण द्वारा श्री रामचरित्र के साथ विशेषरूप से सीता का ही चरित्र कहा गया है। इसीलिये'सीतायाश्चरितं महत्' लिखा गया है और इसी विषय को मानसकार भी **"सीतारामगुणग्राम पुण्यारण्यविहारिणौ"** में सीता पद को पहले रखा है क्योंकि प्रधान को पूर्व रखा जाता है और गौण को पीछे। श्री सीता में महत्व यही है कि जीवों के कल्याणार्थ सतत उत्सुक रहती हैं। भगवान् तो शरणार्थी आत्मा के सन्मुख होने पर कहते हैं कि **'न क्षम्यामि क्षिपामि'**किन्तु श्रीसीता जी का वचन है **'कृपया परिपालय' 'कश्चिन्नापराध्यति'**अर्थात् जीवों को परमात्मा पूर्वकृत कर्मो का फल भोगवाना चाहते हैं तो लक्ष्मी कहती हैं कि कृपया इसकी रक्षा कीजिये, इसका कोई अपराध नहीं है। इसीलिये कहा गया है कि **'लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता'** याने राम जी के गुणसमूह को सीता जी के गुणसमूह ने छोटा कर दिया है। और भी देवगण, वानरसमूह, लक्ष्मण तथा ऋषिमण्डलि भरतादि के आचरण व्यवस्था कैंकर्य के द्योत्तक हैं। लंका में निवास करती हुई जानकी के चरित्र से उपायशून्यता बतायी गयी है।

मानसके शंका समाधान प्रसंग

मानस प्रसंग 1। **"गिरा अरथ जलबीचि सम कहियतभिन्न न भिन्न।बन्दौ सीतारामपद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न।** बा. 18।" इस दोहे में सीता और राम जी को परस्पर भिन्न और अभिन्न बताया गया है तथा और भी अन्यान्य भाव रखा गया है। गिरा स्त्रीलिंग शब्द से सीता को और अर्थ पुल्लिंग शब्द से राम को उपमित किया गया है। **'विशेषणं पुरस्कृत्य विशेष्यस्तदनन्तरम्'** इस नियम के द्वारा प्रथम विशेषण पद रखकर पश्चात् विशेष्य का उपादान किया गया है। सीताराम इस समस्त पद में **'अभ्यहितञ्च'**इस व्याकरण सूत्र के अनुकूल सीता पद को पूजित होने के कारण पूर्व प्रयोग किया गया है। **'मातरं प्रथमं पूज्या पितरस्तदनन्तरम्' 'पितुः शतगुणं माता गौरवेणातिरिच्यते'** उपासकों के लिये मातृस्थानीय श्री सीता और पितृ स्थानीय श्री राम जी हैं। अतः सीता शब्द को पूर्व कह कर राम को पश्चात् रखा गया है। सीता पत्नी और राम जी पति हैं। सीता सेविका राम जी सेव्य। दोनों के जन्म काल में भी 6 वर्ष का अन्तर। एक की जन्मभूमि अयोध्या दूसरे की जनकपुर। सीता वशवर्तिनी राम जी सर्वतन्त्र स्वतन्त्र। सीता पृथ्वी में घुसी राम जी विमान द्वारा गये। ऐसे अनेकों भाव लेकर सीता और राम में भिन्नता दिखायी गयी है। इसी प्रकार गिरा और अर्थ में भी भेद पाया जाता है। गिरा वाचक है और अर्थ वाच्य। किसी भी वस्तुविशेष का वाचक मुख में अँटता है किन्तु सभी वाचकों का वाच्य मुख में नहीं अँट सकता। जैसे सूर्य या अग्नि आदि शब्द मुख से निकलता है किन्तु न तो मुख में प्रकाश ही होता है और न मुख जलता ही है। वक्ताओं के मन में प्रथम अर्थ और पीछे शब्द उपस्थित होता है किन्तु श्रोताओं के मन में प्रथम शब्द और पीछे अर्थ उपस्थित होता है। यही सब भिन्नतायें हैं।

प्रथम सीता और राम शब्द में गिरा और अर्थ के ऐसा कुछ भिन्नता दिखलाकर दूसरा जलवीचि का उदाहरण देकर भिन्नता को दूर किया गया है। इस उदाहरण में प्रथम जल पुल्लिंग शब्द द्वारा पुल्लिंग उपमेय राम को कहा गया है और वीचि स्त्रीलिंग शब्द द्वारा सीता को। याने जल और वीचि जैसे अभिन्न हैं इसी प्रकार सीता और राम भी अभिन्न हैं। जैसे **'यथा सर्वगतष्णुिस्तथैवेयं द्विजोत्तमः'** अर्थात् ये दोनों तत्व एक होकर सर्वत्र व्याप्त रहते हैं। श्री राम जी कहे हैं **"अनन्याश्चमपि सीता भास्करेण प्रभा यथा।** रा. युद्ध 118।19।" और सीता जी भी इसी प्रकार कहती हैं **"अनन्याराघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा**।वा. रा.सुन्दर 21।16।" मानसकार भी इसी प्रकार कहते हैं **"प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई।कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई**।मानस अयो 96।3।" **"तुलसी सीता जो कहै राम न छोड़े पास"** भाव यह है कि उपासकों के लिये दोनों समान उपास्य एवं पूज्य हैं। क्योंकि भगवान् जैसे अपना वैकुण्ठ शेष अनन्तादिकों को छोड़कर चेतनों के कल्याणार्थ वराहादि रूपों में अवतीर्ण होते हैं उसी प्रकार लक्ष्मी भी स्ववासस्थान भगवान् के चरण तथा हृदय एवं कमल को छोड़ कठोर भूमि फोड़कर अवतीर्ण होती हैं। इन दोनों का अवतार चेतनों के कल्याणार्थ होता है, यही अभेद नित्य योग का सूचक है। सीता के आधार राम और राम के आधार सीता हैं। क्योंकि भगवान् श्रीनिवास हैं - **'श्रियाः निवासः श्रीनिवासः।'** भगवान् के विग्रह में मीनरेखा सीता जी हैं। और **'श्रियां निवासो यस्य सः श्रीनिवासः।'** भगवान् और सीता परस्पर अन्योन्याश्रयभाव से रहते हैं।

'रामसुग्रीवयोरैक्यं' हनुमान कहे हैं कि राम और सुग्रीव एक हैं। भाव यह है कि जैसे राम और सुग्रीव का हृदय तथा मन एक हैं - इसी तरह राम और सीता का भी अन्तस्करण चेतनों के कल्याण करने में एक (अभिन्न) हैं। दोनों अयोनिज हैं एवं अप्राकृत विग्रह वाले हैं - **"जन्म कर्म च मे दिव्यम्**।गी.4।9।" दोनों का जन्म और कर्म दिव्य होने से अभिन्नता है। चेतनों के उपाय एवं फलदशा में दोनों एक हैं। **"जल हिम उपल विलग नहीं जैसे**।मानस बाल 115।2।" वन्दन पद भगवान् की शरणागति को बताता है। **"नमश्चक्रुजनार्दनम्"** पद वन्दन का भाव यह है कि भगवान् का चरण चेतनों को कभी भी नहीं छोड़ता। इसीसे **'दृढ़चरणाः'** कहा गया है। यहाँ भी पदवन्दन में सीता पद पूर्व रहकर पुरुषकार पूर्वक ही शरणागति श्रेयस्कर है यह सूचित करता है। इसमें ज्वलन्त उदाहरण जयन्त का है। अथवा पद और अन्तस्करण में एकता है क्योंकि पद के देवता विष्णु हैं और हृदयस्थ भी वही हैं। **"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति**।गी.18।61।" चरण पकड़ने से हृदय पकड़ा जाता है। कठोर से कठोर व्यक्तिका हृदय भी चरण पकड़ने से द्रवित हो जाता है तो कोमल हृदय वाले सीता राम का चरण पकड़ेंगे तो क्यों नहीं कृपा करेंगे अर्थात् अवश्य ही कृपा करेंगे। अज्ञानी दीन एवं निर्बल को कहते हैं - **'नायमात्मा बलहीने न लभ्यः'** बल का अर्थ ज्ञान है याने ज्ञानहीन को परमात्मा नहीं मिलते। बल्कि - **"मोरे प्रौढ़तनय सम ज्ञानी। बालक सुत सम दास अमानी**।अर. 42।4।" ज्ञानी प्रौढ़ शिशु के समान है और अमानी नवजात के समान है। अतः ऐसे के ऊपर भगवान् का अधिक खयाल रहता है। **"प्रौढ़ भये तेहि सुत पर माता। प्रीतिकरे नहीं पाछिल बाता**।अर. 42।4।" यहाँ **'स्वगत शरणागति'**वाला (शरणागति में स्वयं समर्थ)प्रौढ़ और **'परगत शरणागति'**(परमात्मा की दया से शरणागत होने वाला)करने वाला नवजात शिशु है, इसीसे यह परमप्रिय है। **"जेहि दीन पियारे वेद पुकारे**।बाल 185।छंद 4।" **"यह दरवार दीन के" "आदर रीति सदा चलि आई"** अथवा अपना साधनशक्ति से रहित अकिंचन को खिन्न कहते हैं। **'उपायशून्यत्वं अकिंचनत्वम्'** अर्थात् भगवत् प्राप्ति में अपना उपाय न मानकर भगवान् को ही उपाय मानना। यथा -

'निर्भरत्वानुसन्धानम्' **'परम अकिंचन प्रिय हरि केरे**।बा. 160।2।' भगवान् केयही प्रिय हैं। जिनहीं शब्द बहुवचन है - अतः इसका अभिप्राय है कि राम सीता दोनों की कृपा अकिंचन के ऊपर एक ही बार पड़ती है।

श्री यामुनाचार्य स्वामी कहते हैं "**अकिञ्चनोऽनन्यगतिः शरण्य**।स्तोत्र रत्न 22।" किंचन उपायो नास्ति यस्य सः अकिंचनः। जैसे नवजात शिशु को अपनी रक्षा में अपना सामर्थ्य नहीं रहता। इसी प्रकार भगवत्प्राप्ति में जिस भक्त को अपना कोई उपाय नहीं है वही अकिंचन है।

भगवान् सृष्टि कार्य करते हुए यह जानते रहते हैं कि कौन चेतन को किस प्रकार से कल्याण होगा। इसी प्रकार लक्ष्मी भी जानती हैं। दोनों परस्पर एक दूसरे के भाव को जानते हैं। भक्तों के कष्ट सहने में दोनों असमर्थ हैं - अतः पारस्परिक अभिन्नता सतत रहती है। **'परस्परस्य सदृशौ प्राणेंगितसुचेष्टितौ। तुल्यशीलवयोवृत्तं तुल्याभिजनलक्षणम्।'** **'राघवोऽर्हति वैदेहीं तं चेयमसितेक्षणा'** **'सदातवैवोचितया तवश्रिया'** **'स्वैरनुरूपविभवैरनुरूपगुणैः'** राम योग्य सीता और सीता के योग्य राम हैं। दोनों में सामुद्रिकयोग - रेखा, चिह्न, रोम, केशादि समान ही हैं। अतः सभी प्रकार से दोनों में समानता है किन्तु **'वाच्या सा सर्वशब्दानां शब्दश्च न पृथक ततः'** **'अपृथक्त्वेऽपि सम्बन्धस्तयोः'** जैसे वाच्य वाचक सम्बन्ध से शब्द तथा अर्थ दोनों एक साथ रहते हैं उसी प्रकार सीता राम जी को भी जानना चाहिये।

मानस प्रसंग 2। "**ब्रह्मनिरूपण धर्मविधि वरणहि तत्त्वविभाग।कहहिं भक्ति भगवंत की संयुत ज्ञानविभाग**।बा. 44।" यह दोहा मानस के प्रारम्भ में मकरमास के अवसर पर प्रयाग सन्तसमागम सत्संगप्रसंग में होने वाली भगवत् चर्चा विषयक है। ब्रह्मनिरूपण- ब्रह्म (ईश्वर)कौन है, या नहीं है, या है तो उसका क्या लक्षण है - इत्यादि विचार करना ही ब्रह्मनिरूपण है। इस ब्रह्म विचार में शास्त्र में प्रायः मतभेद पाया जाता है। यथा - **सांख्य**शास्त्र प्रकृति को ही जगत् का कारण ब्रह्म मानता है। प्रकृष्टं (विस्तृतं)करोति इस व्युत्पत्ति से प्रकृति को ही कर्त्ता सिद्ध करता है। **मीमांसाशास्त्र** कर्म को ही कर्त्ता मानता है। याने कर्माधीन ही सबकुछ हुआ करता है। **व्याकरण शास्त्र** धात्वर्थ प्रतिपादक संज्ञाशब्द को ही ब्रह्म मानता है। **'सा सत्ता सा महानात्मा'** **'अनादिनिधनं ब्रह्म शब्द तत्वं यदक्षरम्'** याने आद्यन्तरहित नित्य शब्द ही ब्रह्म है। **न्यायशास्त्र - 'अत्र चत्वारि भूतानि भूमिवाय्वानिलानि च। चतुर्भ्यः खलु भूतेम्यश्चैतन्यमुपजायते।।'** भूमि, वायु, अग्नि और जल इन चार वस्तुओं के मेल से चैतन्य जीवन बन जाता है। इसका नियामक ब्रह्म नहीं है - उसकी सत्ता नहीं तथा स्वर्ग परलोक मोक्षादि भी कुछ नहीं है।

चार्वाक सिद्धान्त तो सबों के ऊपर हाथ फेर डाला है। और -

"नस्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः। नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः।।

अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्।बुद्धि पौरुषहीनानां जीविका धातृनिर्मिता।।"

स्वर्ग मोक्षादि की कोई सत्ता नहीं, क्रिया भी फलदायी नहीं। वेद या वैदिकक्रिया को विधाता मूर्ख तथा उद्योगहीनों की जीविकार्थ बनाया है। **"मातृणामपि जन्तुनां श्राद्धञ्चेत्तृप्तिकारणम्। गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम्।"**यदि श्राद्ध में मन्त्र द्वारा दी हुई वस्तु पितरों को मिलती है तो जीवितों को भी मार्ग में मन्त्र द्वारा कलेवा क्यों नहीं मिलता। भोजन बाँधकर चलने के श्रम से भी लोग बच जाते।

पंचदेवोपासक - ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश और सूर्य को ब्रह्म मानते हैं। इसी प्रकार **- 'नाम ब्रह्मेत्युपासते' 'वाचं ब्रह्मेत्युपासते' 'मनोलोकोमनो हि ब्रह्म मन उपासत्व' 'संकल्पं ब्रह्मेत्युपासते' 'ध्यानं ब्रह्मेत्युपासते' 'विज्ञानं ब्रह्मेत्युपासते' 'अनन्तं ब्रह्मेत्युपासते' 'आकाशं ब्रह्मेत्युपासते' 'स्मरं ब्रह्मेत्युपासते' 'आशा ब्रह्मेत्युपासते' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** इत्यादि बहुत से भेद ब्रह्म विषय में शास्त्र बतलाते हैं। इन्हीं निःसार विचारभावों को दूर करने के लिये ब्रह्मनिरूपण पर विचार किया गया है।

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यं प्रयान्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति।" ब्रह्मनिरूपक यह प्रधान श्रुति है जिससे सभी प्राणियों की उत्पत्ति, पालन तथा संहार होता है उसे ब्रह्म समझो। अथवा **"यः सर्वज्ञ सर्ववित् तद्ब्रह्म"**जो सर्वज्ञ है तथा सर्वव्यापक है उसे ही ब्रह्म समझो। **"एकेन विज्ञानेन सर्वं विज्ञानं भवति तद्ब्रह्म।"** जिस एक के ज्ञान से सबों का ज्ञान हो जाता है उसको ब्रह्म समझो। **"ब्रह्मशब्दस्य मुख्यार्थो नृहरिः पुरुषोत्तमः। बृहत्वगुणयोगेन ब्रह्मशब्दः हरौ स्मरतः।।" "नारायण परब्रह्म तत्वं नारायणः परः।"** ब्रह्म के परिचय में उपरोक्त श्लोक हैं। अर्थात् नारायण ही परब्रह्म है क्योंकि श्रुतिप्रतिपादक सभी लक्षण उन्हीं में मिलते हैं। किन्तु **"वेद वेद्ये परे पुंसी जाते दशरथात्मजे। वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षात् रामायणात्मना।**अगस्त्य संहिता।" वही पुरुषोत्तम नारायण परब्रह्म जब राम रूप में अवतीर्ण हुए तो वेद भी रामायण रूप में महर्षि वाल्मीकि द्वारा परिणत हुआ। वेद जैसे नारायण का परिचायक है उसी तरह रामायण श्री रामजी का परिचायक है। श्री राम जी से ब्रह्मा कहते हैं **"भवान्नारायणः साक्षात्।** वा. रा. युद्ध 107।13।" **"ब्रह्मविदाप्नोति परमम्"** ब्रह्म को जानने वाले ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। तत्वविभागों में ईश्वरतत्व श्री राम जी, मायातत्व श्री जानकी जी और जीवतत्व लक्ष्मण जी हैं।

'तत्वविधि'- ईश्वरतत्व में पाँच विभाग है - 1।पर, 2।व्यूह, 3।वैभव, 4।अन्तर्यामी और 5।अर्चा। मायातत्व में दो विभाग है - 1। जड़ और 2। अजड़ है। जीवतत्व में पाँच विभाग हैं - 1।नित्य, 2।मुक्त, 3।बद्ध, 4।कैवल्य और 5।मुमुक्षु।

'धर्मविधान'में भी अनेक मत हैं। यथा - **"यतोवाऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः"** जिससे इस लोक में सर्वोदय और परलोक में कल्याण हो उसे धर्म कहते हैं। **"चोदनालक्षणो धर्मः"**जो करने के लिए कहा गया है वही धर्म है। **"वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षमणम्।"** जो वेद स्मृति में लिखा हुआ है तथा जिसको सत्पुरुष व्यवहार में लाते हैं और जो अपनी आत्मा का संतोषकारक हो उसे धर्म कहते हैं। **"श्रुतिस्मृत्युदितोधर्मः"** श्रुति तथा स्मृति प्रतिपादित विधि को धर्म कहते हैं। **"रामो विग्रहवान् धर्मः।** वा. रा. अर. 37।13।" **"ये च वेदविदो विप्राः ये च आत्मविदो जनः। ते विदन्ति महात्मनः कृष्णं धर्मसनातनम्।**महा. वन पर्व 88।25।" वेद तथा आत्मा के जानने वाले ब्राह्मण लोग कृष्ण को सनातन धर्म कहते हैं। **"प्रत्याक्षावगमः धर्मः"** शास्त्र भगवदुपासना को ही धर्म बतलाया है।

"श्रीरङ्गादिकरूपेण त्रैलोक्यं व्याप्य तिष्ठति। अर्चावतारं सर्वेषां वान्धवो भक्तवत्सलः।।
तामर्चयेत्तां प्रणमेत् पूजयेत् च विचन्तयेत्।विशत्यपास्तदोषस्तु तामेव ब्रह्मनिरूपणम्।।

याने भगवदुपासकों के लिए अर्चावतार ही सुलभ बतलाया गया है। भगवान् स्वतः अपने मुख से कहते हैं **"पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति**।गी. 9।26।" ऐसी उपासना करने को कहे हैं। अर्थात् इन साधनों द्वारा अर्चा की सेवा में अत्यन्त सुलभता है। अर्चा में भी दो भेद हैं। अर्चा में भी दो भेद हैं। एक स्वयंव्यक्त, जैसे - श्रीरंग,

वेंकटेश्वर (श्रीनिवास भगवान्), बद्रीनारायण, जगन्नाथ, शालिग्राम आदि हैं। दूसरा जो मन्त्र द्वारा प्रतिष्ठापित अर्चामूर्ति है।

"भक्ति भगवन्त की" याने परमात्मा की ही भक्ति करनी चाहिए अन्यान्य देवों की नहीं क्योंकि अनन्य भक्ति ही श्रेयस्कर भक्ति होती है। ज्ञानी लोग ऐसी ही भक्ति परमात्मा से माँगते हैं। **"अविरल भक्ति मांगि वर गिद्ध गयो हरि धाम**।अर. 32।" यही भक्ति नव भागों में बँटी हुई है।

यथा - "श्रवणं **कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्**।भागवत 7।5।23।"

1।**श्रवण भक्ति-** भगवच्चरित्र, नाम, गुण, वैभवादिक विषयों को सुनना एवं आर्त उत्पीड़ितों के पुकार को भी सुनना। 2।**कीर्तन भक्ति-**सुने हुए भगवद् विषय को प्रचारार्थ कथन तथा तालस्वरयुक्त गान करने करते हुए इस तरह का कथन करना जिससे अज्ञानियों का अज्ञान दूर हो जावे और वे उन्नति कर सकें।

3। **स्मरण भक्ति** - भगवान् -भागवत, ज्ञानी मानियों के कथनों को स्मरण करते हुए अनाथ, विवश तथा उद्विग्नों को भी स्मरण कर सहायता पहुँचाना। 4।**पादसेवन**भक्ति- भगवान् के चरणों की सेवा के साथ गुरुजनों एवं विश्वमात्र की सेवा का संकल्प लेना। 5।**अर्चना भक्ति** - भगवान् के षोडशोपचार अर्चन के साथ सर्वश्रेष्ठों का यथोचित सत्कार करना तथा शरणार्थियों को शरण, भूखे प्यासे तथा रोगियों को यथेष्ट वस्तुओं का प्रदान, निर्बोधों को बोध देना। 6।**वन्दन भक्ति** - भगवान् के श्रीचरणों को बार बार नमस्कार प्रणाम करना। **"पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते**।गी. 11।39।" तथा विश्वमात्र के सामने अपने को नमित रखना या विनम्रतायुक्त कार्य करना है। 7।**दास्य भक्ति-** अपने को परमात्मा का दास समझते हुए देश सेवा तथा जनकल्याण में अपने को तथा अपने धन का उत्सर्ग करना। अंगद कहते हैं **"नीच टहल गृह के सब करिहौं**।मानस उ. 17।4।" **"करोमि नारायण दासदास्यत**।" 8।**सख्य भक्ति-** परमात्मा से किसी प्रकार का सम्बन्ध मान लेना। यों तो - **"मोहि तोहि नाते अनेक प्रभु अब न तजे बनि आवै**।विनय प. 79।4।" हे प्रभु ! हमारे आपके बीच अनेक सम्बन्ध हैं आप कैसे मुझे छोड़ेंगे, छोड़ते न बनेगा।

"एकैकसम्बन्धबलेन सर्व बहन्ति भारं जनलोक मध्ये। त्वं मामकं चास्ति नव प्रकारं स्वामी विचार्य करुणाबलेन।।" हे नाथ ! सांसारिक पुरुष किसी सम्बन्धी के साथ एक नाता होने पर भी जीवनपर्यन्त उसके भार को ढ़ोता है तो आपके साथ तो मेरा नव प्रकार का नाता है, इसलिए आप विचारें कि कैसे अपने चरणों की सन्निधि से मुझे दूर कर सकेंगे। 9।**आत्मनिवेदन-** अपनी आत्मा को परमात्मा के प्रति निवेदन कर देना। जैसे - गो कन्या या अन्य किसी वस्तु को जिसके लिए दान करके देते हैं तो लेने वाले पर ही दिये हुए वस्तु का भरण पोषण का भार चला जाता है और वह लेना व्यक्ति उस भार को ढ़ोता है। उसी प्रकार परमात्मा आत्मा के भार को ढ़ोते हैं और दान देने वाला व्यक्ति निश्चिन्त हो जाता है। **"कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति**।गी.9।31।" **क्योंकि "तेषामहं समुद्धर्ता मृत्यु संसार सागरात्**।गी. 12।7।" हे अर्जुन ! मेरे भक्त कभी भी नष्ट नहीं होते क्योंकि आत्मसमर्पण करने वाले को मैं संसार समुद्र से उद्धार करने वाला हूँ । यही शरणागति है। **"आनुकूलस्य संकल्पः प्रातिकूलस्य वर्जनम्। रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा।आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षडिवधा शरणागतिः**।लक्ष्मीतन्त्रम् 17।60-61।" भगवत् प्राप्ति के

अनुकूल का संकल्प, प्रतिकूल का त्याग, रक्षक भगवान् में पूर्ण विश्वास, रक्षार्थ उन्हीं की नियुक्ति, आत्मसमर्पण - ये छः शरणागति के अंग हैं। यही नवधा भक्ति के नाम से विख्यात है।

दोहा में आगे ज्ञान का विषय इसलिए रखा गया है - **'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'**ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती है। **"ज्ञानीत्वात्मैव मे मतम्।**गी. 7।18।"ज्ञानी भक्त तो हमारी आत्मा ही है। **"अभ्यसेन्मत्परं ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षवाप्नुयात्। अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्वज्ञानार्थ दर्शनम्। एतज्ज्ञामिति प्रोक्तं अज्ञानं यदतोऽन्यथा।।"** आत्मसम्बन्धि ज्ञान में सदा तत्पर रहना याने मैं अणु हूँ , स्वयं प्रकाशमान हूँ , भगवान् के अंश याने भोग्य हूँ। **'ज्ञायते अनेनेति ज्ञानम्'** अर्थात जिस तत्वज्ञान द्वारा परमात्वतत्व का ज्ञान हो जाता है वही ज्ञान है और अन्यान्य सब अज्ञान है।

भगवत् प्राप्ति चाहने वाले व्यक्ति को संसार से विराग होना आवश्यक है क्योंकि जबतक संसार में प्रेम रहता है तब तक संसार बन्धन में ही बँधा रहना पड़ता है - जैसे राजा भरत को हुआ था। इसीलिए पूर्वाचार्यो का कहना है। **"न देहं न प्राणान्न च सुममशेषाभिलषितम्' 'तृणीकृतविरंच्यादि निरंकुशविभूतयः'**

"सालोक सार्ष्टि सामीप्य सारूप्यैकत्वमप्युत।दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः।भा. 3।29।13।"

'पत्युः प्रजानामैश्वैर्य पशूनां वा न कामये। विषयत्यागिनस्तेषां विज्ञेयं च तदन्तिकम्।।' याने देह प्राणादिक सम्पूर्ण सुखों को मैं नहीं चाहता हूँ। ब्रह्मलोक के सुख को तृण के समान समझता हूँ। उत्तम कोटि के भगवद् भक्त भगवत्सेवा छोड़ मोक्ष भी नहीं चाहते तो अन्यान्य सुख तो तुच्छातितुच्छ है ही। **'विषयासक्तचेतसां'** से भगवान् बहुत दूर रहते हैं।

"जहाँ काम तहँ राम नहीं जहाँ राम नहीं काम। तुलसी दोउ न होत है रवि रजनी इक ठाम।तुलसी सतसई 1।44।"

" यह जग से छत्तीस '36'हो रामचरण छवतीन'63'।तुलसी सोई चतुरता सोई परम प्रवीन।तुलसी सतसई 3।7।"

संसार को छत्तीस की तरह पीठ देकर रहो और रामचरण की ओर **63** अंक की तरह सन्मुख रहो। जब संसार विराग उत्पन्न होगा तभी परमात्मा में मन लगेगा। जैसे - सनकादिक - नवयोगेश्वर - नारद - भरत -शुकदेव -वामदेवादिक। ऐसे ही विरागियों को भगवान् में मन लगा है, इसीलिए कहा है **'संयुतज्ञानविराग।'"भगवत् तत्वविज्ञानं मुक्तसंगस्य जायते'**संसार से विरक्त हो जाने पर - **"न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्णयं न सार्वभौमम् न रसाधिपत्यम्।न योगसिद्धिरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्।**भा. 11।14।14।" मुझमें आत्मसमर्पण करने वाले भक्तजन ब्रह्मलोक इन्द्रलोक नागलोक भूलोक योगसिद्धि तथा मोक्ष तक भी नहीं चाहते हैं। वही भक्ति का स्वरूप दिखाया गया है तथा उक्त दोहा में पूर्वोक्त ब्रह्मनिरूपण, धर्म की विधि, तत्वों का विभाग, भगवान् के प्रति भक्ति और ज्ञानयुत विराग की चर्चा और सत्संगप्रयाग में समुपस्थित ज्ञानियों द्वारा हुआ करता था जिसमें सर्वसाधारण जनों का कल्याण निहित रहता था। इसी उद्देश्य से सभी पुण्यक्षेत्रों में समय समय पर जनसमूहों का समागम हुआ करता था और आज रूपान्तर में परिणत हो सकल अनर्थ का कारण बन गया है।

मानस प्रसंग 3।**पुलक बाटकि‍ा बाग वन सुख सुविहंग विहारु। माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु।** बा. 37।"
भगवच्चरित्र के अनुसन्धानमात्र से रोमाञ्च हो जाने के प्रसंग को एक रूपक में बाँधकर मानसकार यह दोहा मानसमाहात्म्य में दिखाया है।

"सा जिह्वा हरिं स्तौति तन्मनस्तत्पदानुगम्। तानि लोमानि चोच्यन्ते यानि तन्नाम्नि चोत्थितम्।।" भगवद् भक्त भगवान् के चरित्र को अनुक्षण स्मरण करते और अन्यों को स्मरण कराते आनन्दातिशय से पुलकांगित होते रहते हैं। **"स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम्। भक्त्या संजातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम्।**भा. 11।3।31।" आत्मा तो परमात्मा का है ही शरीर का रोम रोम उनकी सेवा में लग जानी चाहिए। **"श्रृण्वन् जनार्दनकथा गुणकीर्तिनानि देहेन यस्य पुलकोद्गमरोमराजी। नोत्पद्यते नयनोर्विमलाम्बुमाला धिक्तस्य जीवनमहो पुरुषाधमस्य।।"** भगवान् के पवित्र चरित्र कीर्तनादि सुनकर जिसके नेत्र में जल तथा रोमाञ्च नहीं हुआ उसके जीवन को धिक्कार है।

"मम गुण गावत पुलक शरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा।अर. 15।6।"

"अस सज्जन मम उरबस कैसे। लोभी हृदय बसत धन जैसे। सु.47।4।" भगवान् श्री राम जी कहते हैं कि मेरा चरित्र सुनकर जिनका शरीर पुलकित होता है, नेत्रों से जल बहता और बोली गदगद हो जाती है - वे सज्जन हमारे हृदय में लोभी हृदय वालों के धन के समान बसते हैं याने जैसे लोभी को धन प्यारा होता है वैसे ही वे सब हमारे प्यारे होते हैं। किन्तु वैसा हृदय केवल भगवान् की कृपा से ही होता है अन्य कोई साधन से नहीं। **"यह गुण साधन ते नहीं होई। तुम्हरे कृपा पाव कोई कोई।**कि.20।3।"

यही प्रसंग **'पुलक वाटिका....'** इस दोहे में दिखाया गया है कि भगवान् के रूप गुण तथा चरित्र को देख सुनकर जिस भक्त के शरीर में रोमाञ्च हो जाता है वही बाटकिा और लोम समूह ही बाग तथा वन है। भगवच्चरित्र कहने सुनने से जो सुख होता है वही पक्षी और पवित्र मन ही उस वाटिका का माली (पोषक या रक्षक)है। यह बाटकिा कोमल प्रकृति की तथा कथाभेदरूप माधुर्यरसयुक्त थोड़ी दूर में है। अतः रक्षार्थ माली अपने स्नेह जल से इसे बार बार सींचता रहता है और अनेक कोमल भावनारूप पुष्पादि लगाया करता है। यही माधुर्य तथा करुण रस प्रधान प्रेमा भक्ति है जो अल्पमात्रा में हुआ करती है।

वाटिका स्थानीय प्रेमाभक्तमान् सुतीक्ष्णादि को जानना चाहिए क्योंकि ऐसे भक्तों में भगवत् मिलन की आतुरता रहती है। "**पुलक शरीर पनस फल जैसा**।अर. 9।8।" यदि इष्ट की प्राप्ति में कुछ विलम्ब हुआ कि वाटिका के कोमल पुष्पों की भाँति ऐसे भक्त मुरझाने लगते हैं। इस वाटिका के चतुर्दिक कुछ विस्तृत रूप में सुन्दर एवं सुदृढ़ वृक्ष लगे हुए हैं, यही बाग है। एतत्स्थानीय वाल्मीकि आदि को जानना चाहिए क्योंकि सुतीक्ष्णादि की अपेक्षा इनमें कुछ दृढ़ता है, ज्ञान का पुट है। ऐसी भक्ति को परमा भक्ति कहते हैं।

वाटिका तथा बाग के चारो अतिविस्तृत क्षेत्र में बाग के वृक्षों की अपेक्षा अत्यन्त दृढ़ वन है जिसमें सुरक्षक माली की आवश्यकता नहीं है। एतत्स्थानीय ब्रह्मा रुद्रादिकों को जानना चाहिए। भाव यह है कि जिस रोमाञ्च में नेत्र से जल नहीं आया वही रोमाञ्च वनस्थानीय है। इस प्रकार पुलकावली तीन भागों में विभक्त है। इस मानसरोवर के चारों तरफ समीपवर्ती वाटिका है, इसके पश्चात् बाग है और इसके बाद वन है। अतः बाग दोनों के बीच में पड़ता है। वाटिका स्वरूप जो रोमावली है इसमें नेत्र में जल आता है। वनस्थानीय पुलकावली में जल नहीं आता और बागस्थानीय पुलकावली मध्यम अवस्था रहती है। यह माधुर्य और ऐश्वर्य उभय प्रधान होता है क्योंकि दोनों के बीच में है। वाटिका में माधुर्य की प्रधानता है और वन में ऐश्वर्य की प्रधानता रहती

है। इन दोनों के मध्य में बाग को रहने के कारण इसकी साम्य अवस्था रहती है याने बागस्थानीय भक्तों की पुलकावली सजल और निर्जल दोनों प्रकार की होती है। अवस्थाप्रकार भेद से तीनों प्रकार की रोमावलियाँ एक व्यक्ति में भी हो सकती है। उक्त तीनों प्रकार की रोमावलीयुक्त भक्तों का उदाहरण नीचे दिया जाता है।

सजल रोमावली वाले वाटिकास्थानीय भक्त भरत - "**सुनि तन पुलक नयन भरि बारि। बोले भरत धीर धरि भारी।** अयो. 292।1।" (अहिल्या) "**अति प्रेम अधीरा पुलक शरीरा युगल नयन जल धार बही।** बा. 210।छं 1।" सीता के सखियों की "**तासु दशा देखि सखिन पुलकगात जल नैन।** बा.228 ।" राजा दशरथ की "**वारि विलोचन बाँचत पाती। पुलकगात आई भरी छाती।** बा. 289।2।" महादेव जी की "**पुलकगात लोचन सजल उमा सहित त्रिपुरारि।** बा. 315। कौशल्या की "**बार बार मुख चूमति माता। नयन नेह जल पुलकित गाता।** अयो. 51।2।" लखन लाल की "**कम्प पुलकतनु नयन सनीरा। गहे चरण अति प्रेम अधीरा।** अयो. 69।1।" एक तपस्वी की "**सजल नयन तन पुलकि निज इष्टदेव पहिचानी।** अयो. 110।"

भरत की "**तन पुलके अति हर्ष हिये वेनि वचन अनुकूल।** अयो. 205।" "**पुलक गात हिय राम सिय सजल सरोरुह नयन।** अयो. 210।" "**पुलक शरीर सभा भय ठाड़े। नीरज नयन नेह जल बाढ़े।** अयो. 259।2।" "**अस कहि प्रेमविवस भये भारी। पुलक शरीर विलोचन वारी।** अयो. 300।3।

जंगलवासियों की "**सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर। सरद सरोरूह नयन तुलसी भरे सनेह जल।** अयो. 226।" "**एहि विधि पूछहि प्रेमवश पुलकगात जलनैन।** अयो. 112।

भरत को"**पुलक गात हिय सिय रघुवीरा। जीह नाम जप लोचन नीरा।** अयो. 325।1।" विभीषण की "**नयननीर पुलकित अतिगाता। मन धरि धीर कहि मृदु बाता।** सु.44।3।" हनुमान को "**देखत हनुमान अति हरषे। पुलकगात लोचन जल बरषे।** उ. 1।1।" भरत हनुमान- "**मिलत प्रेम नहीं हृदय समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता।** उ. 1। 5।"

अवधवासियों की "**सबके उर निर्भर हरष पूरित पुलक शरीर।** बा. 300।"

गरूड़ की "**पुलकगात लोचन सजल मन हरषे अति काग।** उ. 69।" सनकादिकों की "**तिनकर दसा देखि रघुबीरा। स्रवत नयन जल पुलक शरीरा।** उ. 32।3।" जनक की "**मूँदे नयन सजल पुलके तन। सुयश सराहन लगे मुदित मन।** अयो. 287।1।" वनवासियों की "**चित्रलिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े। पुलक शरीर नयन जल बाढ़े।** अयो. 134।3।"

इस प्रकार शरीर में और नेत्रों में जल दोनों एक साथ होते हैं इसी नेत्रजल में पुलकवाटिका का सिंचन होता है। विना नेत्रजल के केवल रोमाञ्च होना बाग तथा वन के समान है। जैसे अवधवासियों की - "**पुलक शरीर (सप्रेम)परस्पर कहहीं। भरत आगमन सूचत अहहिं।** अयो. 6।3।" दशरथ की "**तनु पुलक पुनि देखि अपने सुकृत सुरतरु फल नये।** बा. 324 छंद 1।" जनकपुर वासियों की "**प्रेमपुलकित हृदय उछाहू। चले विलोकन राम विवाहू।** बा. 313।2।" श्री राम जी की "**राम सप्रेम पुलक उर लावा। परमरंक जनु पारसपावा।** अयो. 110।1।" श्री राम जी कौशल्या की "**तनु पुलकित मुख बचन न आवा। नयनमूँदि चरणन शिरनावा।** बा. 201।3।" भरत दोनों भाई "**सुनि पाँति पुलकेउ दोउ भ्राता। अधिक समेत समात न गाता।** बा. 290।1।" सभी रानियों की "**पेमपुलकि तन राजहिं रानी। मनहुँ शिखिन सुनि बारिद बानी।** बा. 294।2।"

केवट - "**प्रेमपुलकि केवट कह नामू। कीन्ह दूरि ते दण्ड प्रणामू।** अयो. 242।3।"

वशिष्ठ - "**मुनि पुलके लखि शील सुभाऊ।** अयो. **289।4।**"

हनुमान - "**सुनि भरत बचन बिनीत अति पुलकि तनु चरणन परयो।** उ. **1**।छंद।"

इन प्रसंगों में नेत्र जल विना ही शरीर को पुलकित होना देखा गया है। ऐसा पुलक वनस्थानीय है। भगवान् की कथा कहने सुनने अथवा स्वयं अनुसन्धान से जो रोमहर्ष होता है वह वन के सदृश सिंचनक्रिया बिना ही अपनी दृढ़ता को सम्हाले हुए है। महादेव व्यासादि में ऐसी दृढ़ता रही है।

शिव - "**चले जात शिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता।** बा. **49।2।**"

व्यास - "**गद्गदस्वरसंयुक्ता रोमहर्षाङ्कितां गताः।** भा.।" मैत्रेय - "**प्रहृष्टरोमा भगवत्कथायाम्।** भा. **3।13।5।**"

गोपियों की - "**या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ। गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठयो धन्याब्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः।** भा. **10।44।15।**" गौओं को दूहते हुए, अन्न कूटते, दही मथते, गृह लीपते, बच्चों को झूला झूलाते, रोते हुए बच्चों को पुचकारते तथा झाड़ू लगाते समय भी गद्‌गद् कण्ठ से श्रीकृष्ण के गुणगान करती हुई गोपियाँ धन्य हैं। भक्तों के हृदय में भगवान् के स्वतः अनुसन्धान से जो रोमाञ्च होता है वह वन के तुल्य इसलिए है कि स्वतः अनुसन्धान द्वारा रोमाञ्च की तरह वन भी स्वयं उग आते हैं और जो किसी दूसरे के उपदेश द्वारा भगवत्स्मरण से रोमाञ्च हुआ वह बाग और वाटिका तुल्य हैं क्योंकि बाग और वाटिका लगाने पर ही लगता है अन्यथा नहीं। "**कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना। विनाऽऽनन्दाश्रुकलया शुद्ध्येद् भक्त्या विनाशयः।।**" भगवदनुसन्धान से होने वाले रोमाञ्च अश्रुपात द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि होती है।

'**सुखसुविहंगविहार**' **विहायसागच्छतीति विहंगः** - विहायस् उपपद-गम्-धातुसे विहंग शब्द की रचना होती है और इसके पूर्व सु उपसर्ग लगा देने से सुविहंग याने आकाशगामी सुन्दर पक्षी। इससे हंसादि उत्तम पक्षियों को समझना चाहिए न कि काक इत्यादि नीच पक्षियों को। क्योंकि इस रूपक में अत्युत्तम वस्तु भगवदनुभवजन्य सुख है - इसलिए इसका समकक्ष सारग्राहक हंस ही हो सकता है। भूमि छोड़ आकाशगामी होने से विहंग संज्ञा हुई। इसीप्रकार सांसारिक नश्वर सुखों को त्यागने से ही उत्तम वास्तविक सुख की प्राप्ति हो सकती है। भगवान् के रूप गुण वैभव सौन्दर्य माधुर्यादि को क्रमशः अनुभव कर सुखी होना ही विहंग का विहारस्थान है। याने सुखरूपी सुविहंग क्षण क्षण में भिन्न भिन्न प्रकार के सुखों के अनुभव द्वारा प्रसन्न होते रहना है। भगवद्भक्तों के भिन्न भिन्न भक्तिभावना उत्पन्न सुख भिन्न प्रकार की पक्षियाँ हैं। जिनमें रायमुनीपक्षी सदृश सुख वाटिका में, कोकिल सदृश सुख बाग में और हंस सदृश सुख वन में होता है। याने रायमुनि पक्षी वाटिका में, कोकिल बाग में और हंस मोर वन में सुखी रहते हैं।

अथवा विहंगशब्द से ज्ञानी संन्यासी को समझना चाहिए - "**बहवः विहंगाः भिक्षुचर्यां चरन्ति**" बहुत संन्यासी और हंस भोजनार्थ भिक्षुचर्या किया करते हैं। अर्थात् भगवद्भक्ति से उत्पन्न सुखरूप वाटिका, बाग एवं वन में हंस पक्षी रूप ज्ञानी विहार किया करते हैं।

अथवा सुविहंग शब्द से आत्मा को समझना चाहिए। "**द्वासुपर्णासयुजा सखाया**" आत्मा को भगवान् के चरित्र गुणादि अनुसन्धान द्वारा होने वाले सुख को विहारस्थान पर जानना चाहिए। इस रूपक में सुख ही को विहंग और विहंग का विहारस्थान भी दर्शाया गया है।

मानस प्रसंग 4। "**जेहि अघ बधेउ व्याध जिमि वाली। सोइ सुकंठ पुनि कीन्ह कुचाली।।**

सोई करतूति विभीषण केरी। सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी। बा. 28।3-4।" इन चौपाइयों के अर्थ में रामायणियों का कहना है कि जिस पाप के कारण भगवान् ने वाली को मारा वही पाप करने वाले सुग्रीव के ऊपर भगवान् ने स्वप्न में भी ध्यान नहीं दिया। याने प्रजा का किया पाप राजा को भी लगता है, अतः वाली के पाप से भरत जी को बचाने के लिए भगवान् जब उसको मारे तो वाली सदृश सुग्रीव को भी मारना चाहिए था किन्तु ऐसा क्यों नहीं किया ? वाली का पाप यह था कि दुंदुभि राक्षस को मारने के लिए एक गुफा में प्रवेश करते समय वाली ने सुग्रीव को यह कहा था - "**परखेहू मोहि एक पखवारा। नहीं आयऊँ तो जानेहूं मारा।** कि.5।3।"
"**मास दिवस तहँ रहेउ खरारी।निसरा रूधिर धार तहँ भारी।** कि. 5।4।" तुम यहाँ एक पखवारा अर्थात् पन्द्रह दिन तक मेरी प्रतिक्षा करना। यदि इस अवधि तक मैं नहीं लौटा तो जानना कि मैं मारा गया। किन्तु सुग्रीव वहाँ मासदिवस याने (मास बारह होते हैं और दिवस का अर्थ दिन होता है, तो मास दिवस का अर्थ बारह दिन हुआ क्योंकि ज्योतिष आदि ग्रन्थों में मास बारह का ही बोध होता है) पन्द्रह दिनों के स्थान में बारह ही दिन रहे। उसी समय उस गुफा से रक्त की महाधार बहते देख कर सुग्रीव ने यह सोचा कि बाली मारा गया। अब राक्षस गुफा से बाहर आकर मुझे भी मार डालेगा। अतः "**शिला द्वार दे चला पराई**" एक चट्टान से उस द्वार को बन्द कर भाग आया। जब वाली द्वार बन्द देखा और बाहर सुग्रीव को भी नहीं देखा तो अत्यन्त क्रोधित हो उसकी स्त्री को ले लिया और उसको भी मारना चाहा।

सुग्रीव पन्द्रह दिन न रहकर बारह ही दिन वहाँ रहे यही इनका अपराध हुआ। किन्तु वाली इनकी स्त्री रुमा को अपहरण किया है यह महान अपराध है क्योंकि - "**अनुजबधू भगिनी सुतनारी।सुनु सठ ये कन्या सम चारी।।इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई । ताहि बधे कछु पाप न होइ।** कि. 8।4।" छोटे भाई की स्त्री, बहन, पतोहू और कन्या ये सभी समान हैं। इनको यदि कोई कुदृष्टि से देखता है, उसको बध कर देना ही उचित है।
"**औरसीं भगिनीं वापि भार्या वाप्यनुजस्य यः। प्रचरेत नरः कामात्तस्य दण्डो वधस्मृतः।** बा. रा. कि. 18।22।" अतः ऐसे अपराधी को मारकर भगवान् ने प्रायश्चित्त किया है। इसी से वाली भी नरक से बचा और भरत को पापभागी नहीं बनना पड़ा। यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण में विस्तृत रूप से है। किन्तु सुग्रीव को वाली सदृश अपराधी बनाने वाले यह कहते हैं कि सुग्रीव गुफाद्वार पर पन्द्रह दिन के बदले 'मासदिवस' याने तीस दिन तक सुग्रीव वहाँ ठहरे। अतः निर्दोष सुग्रीव के साथ वाली का अत्याचार हुआ था। किन्तु 'मासदिवस' का यह अर्थ अर्थनियमों के प्रतिकूल है।तथा यह भी कहते हैं कि वाली मारा गया तो सुग्रीव ने उसकी स्त्री तारा को अपना स्त्री बना लिया, अतः वाली के तुल्य यह भी अपराधी हुआ। किन्तु ऐसी बात नहीं है, भगवान् उपदेश द्वारा तारा को ज्ञानी बना दिये हैं, वह व्यभिचारिणी नहीं थी। "**तारा विकल देखि रघुराया।दीन्ह ज्ञान हरि लीन्हि माया।। उपजाज्ञान चरण तब लागी।लीन्हेसि परम भक्ति वर माँगी।।** कि. 10।2 एवं 3।" अब तो भगवान् के उपदेश द्वारा वह लौकिक मायावासनारहित हो गयी थी न कि व्यभिचारिणी। हाँ, रावण अंगद को गाली दिया है। "**तारा तासु भई पटरानी।।**" याने तारा सुग्रीव की बड़ी महिषी बन गयी है। किन्तु इसका प्रमाण और कहीं भी नहीं मिलता और

सुग्रीव यदि ऐसा करता तो अंगद से कभी भी सहन नहीं होता। वह सुग्रीव को अवश्य मार देता। यदि **'तुष्यतु दुर्जनः'** न्याय से इस कथन को कुछ क्षणों के लिए सत्य भी माना जाय तो भी वालीसदृश सुग्रीव अपराधी नहीं हो सकता। क्योंकि शास्त्र यह बतलाता है कि - **"अश्वालम्भं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्। देवरेण सुतोत्पत्तिः कलौ पंच विवर्जयेत।।"** अश्वमेध, गोमेध, संन्यास, पितृकार्य में मांस और देवर द्वारा सन्तानोत्पादन ये पाँच कार्य कलियुग में वर्जित हैं न कि अन्य युगों में। सुग्रीव तो त्रेता में थे। उस समय **'देवरं कुरुते पति'**स्त्रियाँ देवर को पति बनाया करती थी। अतः यदि सुग्रीव तारा को अपनी स्त्री बनाया भी तो धर्मशास्त्र के अनुसार दोषी नहीं हुआ। तारा छोटे भाई की स्त्री तो नहीं थी कि यह भी वाली सदृश ही पापी हुआ। अतः स्त्री अपहरण लेकर दोनों समान अपराधी नहीं हैं। इन दोनों को इस विषय को लेकर समान अपराधी कहना भूल है। शूद्रों में प्रायः ऐसा विवाह होता है तो बानर पशुओं की तो बात ही क्या। अब रह जाता है चौपाई के अर्थसमन्वय की बात।

चौपाई में अघ शब्द से अभिमान अर्थ लिया गया है। वाली अत्यन्त अभिमानी था। **"अस कहि चला महा अभिमानी।तृण समान सुग्रीवहि जानी।**कि. 7।1।" अभिमान पापों में प्रधान है - अभिमानी भगवान् को भी नहीं मानते। **'ईश्वरोऽहं अहं भोगी'**अभिमानी अपने को ही ईश्वर मानकर मुझको अपमान करता है। यह दोष वाली में प्रधान था। भगवान् श्री राम के द्वारा सुग्रीव को सुरक्षित जानकर भी मारना चाहता है **"ममभुज बल आश्रित तेही जानी।मारा चहसि अधम अभिमानी।**कि. 8।5।" इसलिए यह महा अभिमानी सिद्ध होता है। **"मूढ़ तोहि अतिशय अभिमाना। नारी सिखावन करेसि न काना।**कि. 8।5। **अस कहि चला महा अभिमानी।**कि. 7।1।" वाली भी स्वयं अपने को अभिमानी स्वीकार किया है। **"मोहि जानी अति अभिमानबस प्रभु कहेउ राखु शरीरहीं।**कि. 9।छंद 1।" और यही अभिमान सुग्रीव में भी हुआ है। **"सुग्रीवहिं सुधि मोरि बिसारी।पावा राजकोष पुरनारी।**कि. 17।2।" श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि सुग्रीव राज्य प्राप्त कर मुझे भूल गया। क्योंकि **"श्रीमद् वक्र न कीन्ह के ही प्रभुता बधिर न काही।**उ. 70।" लक्ष्मण भी यही कहे हैं (वन में भरत की सेना देखकर)- **"विषयी जीव पाई प्रभुताई। मूढ़ मोहवश होही जनाई।**अयो. 227।1।" **"तेऊ आज राजपद पाई। चले धर्म मर्याद मिटाई।**अयो. 227।2।" राजमद से मत्त सुग्रीव के प्रति राम जी यों कहे हैं - **"जेहि सायक मारा मैं वाली। तेहि शर हतौं मूढ़ कहँ काली।**कि. 17।3।" सुग्रीव के अभिमान को देखकर ही भगवान् ने यहाँ तक कह डाला। यही अभिमान आ जाने के कारण वाली और सुग्रीव समान अपराधी हैं न कि परस्पर एक दूसरे की स्त्री-अपहरण दोष से।

तारा ने नारायण के परख को भी वाली को बताया है। **"सुनु पति जाही मिला सुग्रीवाँ।ते दोउ बन्धु तेज बल सीवाँ।**कि. 6।14।" तारा यह तेज बल शब्द से नारायण को बतलाती है। **"अप्रमेयो हि तत्तेजा यस्येषाजनकात्मजा।**वा. रा. कि.।" **" यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।**गी. 15।12।"**"सबकर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवधपति सोई।**बा. 116।3।" किन्तु वाली अभिमानवश ध्यान नहीं दिया। वाली का तीन विषय का अभिमान था। एक इन्द्र के पुत्र का, दूसरा समर में शत्रु के आधा बल मिल जाने का, तीसरा स्वयं अधिक बलशाली होने का। और सुग्रीव में राज्यपद प्राप्त होने पर अभिमान हुआ यही दोनों में समानता है। इसी प्रकार विभीषण में भी कुछ दोष आ गया था।

"अन्तर्भूमो गृहे बद्धं राक्षसं बहुश्रृंखलैः। अथाह राघवो विप्राः किमनेन कृतं त्विति।।

तैरुक्तं ब्रह्महत्येति वृद्धब्राह्मण संज्ञितः। द्विजोऽति धार्मिकः कश्चित् एकान्ते प्रवयाकृशः।।

ध्यानायोपवने तस्थौ तत्र गत्वा विभीषणः। पादेनाधर्षयेद्विप्रं स विप्रोऽप्यतिचूर्णितः।।

अस्माभिस्ताड़ितो विप्रो न ममार वधैरपि। पदमेकतमो गन्तुं न शशाक विभीषणः। प. पु. पाता. **104।145-48।"**

पद्मपुराण (पाताल खंड **104।145-148**)की कथा है कि विभीषण अभिमान वश एक तपस्वी को लात से मार कर जान मार दिया था। अतः ऋषिलोग भी इनको जान से मारना चाहा किन्तु जब नहीं मारा तो उसको लोग बाँध रखे। श्री राम जी जब उसे अयोध्या में खोजे और नहीं मिला तो उसी ऋषि आश्रम पर जा विभीषण को बंधा पाकर ऋषियों से पूछा ऐसा क्यों ! तो उनलोगों ने कहा यह विभीषण ध्यानावस्थित एक ऋषि को लात से चूर्ण चूर्ण कर दिया है, अतः हमलोग भी इसे मार डालेंगे। यह सुनकर भगवान ने कहा कि **'वरं ममैव मरणं मद्भक्ताः हन्यते कथम्'**हे ऋषियों ! मुझको ही मर जान अच्छा है मेरा भक्त क्यों मारा जायेगा, आप लोग विभीषण के बदले मुझको ही मारें। यह सुनकर वे लोग बोले कि हे भगवन् यदि आप विभीषण के अपराध को आप अपना अपराध मानते हैं तो आप ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त कर शुद्ध हो जायें। यह सुनकर भगवान् श्री राम जी ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्त किये तथा विभीषण को छुड़ा लाये। यही विभीषण की करतूति है जिसको भगवान् स्वप्न में भी नहीं देखे हैं क्योंकि उनका यही स्वाभाविक गुण है।

"जन अवगुण प्रभु मान न काऊ। दीनबन्धु अति मृदुल स्वभाऊ।उ. **0।3।"**

" रहत न प्रभु चित चूक किये की। करति सुरति सौ बार हिये की।बा. **28।3।"** इसी को आश्रित दोष भोग्यत्व कहते हैं। सुग्रीव और विभीषण दोनों ही भगवान् के आश्रित थे। इसीलिए इनके दोषों के ऊपर भगवान् ने ध्यान नहीं दिया। सुग्रीव के साथ वाली का अन्याय हो रहा था इसलिए भगवान् को असह्य हुआ क्योंकि उनका यही स्वभाव है। **"जो अपराध भक्तकर करई। रामरोष पावक सो जरई।**अयो. **217।3।"** बल्कि अपने साथ अपराध करने वाले को ऐसा नहीं करते **"निज अपराध रिषाहीं न काऊ।**अयो. **217।2।"**

ऊपर वाली सुग्रीव तथा विभीषण में एक अभिमान ही प्रधान दोष रहने के कारण तुलसीदास जी यह कहते हैं कि **"सोई सुकंठ पुनि कीन्ह कुचाली। सोई करतूति विभीषण केरी।।"** न कि वाली के ऐसा स्त्री अपहरण दोष लेकर समान बताया है। इति।

मानस प्रसंग 5 । **"बिधि हरिहर तप देखि अपारा। मनु समीप आये बहु बारा।।**

माँगहु वर बहुभाँति लोभाये। परमधीर नहीं चलहिं चलाये।।बा. **144।1।"** मनु शतरूपा की घनघोर तपस्या देखकर ब्रह्मा विष्णु महेश तीनों एक साथ मनु के समीप बहुत बार आये तथा वर मांगने के लिए उन दोनों को बहुत आग्रह किया। फिर भी परम धैर्यवान होने के कारण उन दोनों ने इन देवताओं को न प्रणाम ही किया और न वर ही मांगे। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि ये दोनों सन्तानार्थ वरप्राप्ति ही के लिये तो तपस्या कर रहे थे तो वर क्यों नहीं मांगे ? तथा एक बार न बोलने पर भी देवता लोग बार बार मांगने के लिये आग्रह क्यों करते रहे और ऐसा करने पर भी मनु को धीर विशेषण द्वारा प्रशंसा क्यों की गयी ?

उत्तर - मनु में अनन्य भक्ति थी - **"गति अनन्य तापस नृप रानी।**बा. **144।3।"** शास्त्रों में अनन्य भक्ति की प्रशंसा सर्वत्र पायी जाती है। प्रभु की प्रसन्नता भी इसी में होती है। **"प्रभु सर्वज्ञ दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृप रानी।**बा. **144।3।"** इस चौपाई में निज शब्द अन्य का निषेधक है याने एक भगवान् को छोड़कर दूसरे में प्रवृत्ति

नहीं हो जैसे पतिव्रता स्त्री को निष्ठा होती है।इस भाव को जानने वाले ईश्वर के लिए सर्वज्ञ शब्द आया है। ई श्वर की यही आज्ञा है - **"अनन्यैनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते।।"** अर्थात् अनन्यभाव से उपासना करने वालों को ही कल्याण होता है। यह आत्मा **"अनन्यशेषरूपा वै जीवास्तस्य महात्मनः।।"** अर्थात् आत्मा परमात्मा का अनन्य शेष है। **"भगवच्छेषमात्मानमन्यथा यः प्रपद्यते। स चैव हि महापापी चाण्डालः स्यान्नसंशयः।।"** अर्थात् भगवान् के शेष इस आत्मा से जो दूसरे देवताओं की उपासना करते हैं वे चाण्डाल तुल्य हैं। इसी विषय में कहा है - **"अन्यालये हरिं दृष्टवा देवतान्तरसंसदि। नार्चयेत् न प्रणमेत् तीर्थसेवा विवर्जयेत्।।"** भाव यह है कि अन्य देवता के समीपस्थ भगवान् को भी प्रणाम पूजा तीर्थ पानादि सब छोड़ दे। इसीलिए अन्य देवताओं के साथ आये हुए भगवान् को मनु कैसे प्रणाम करते और इसीलिए वर भी नहीं मांगे।यहाँ अनन्यता की परीक्षा है। यदि अन्यों को छोड़कर मनु केवल भगवान् को प्रणाम करते तो विषमता होती और वे लोग शाप इत्यादि भी दे सकते थे। यदि साथ प्रणामादि व्यवहार करते तो अनन्यता भंग होती और परीक्षा में अनुत्तीर्ण होते। इस प्रसंग में मनु की औचित्य अनन्यता के कारण ब्रह्मा तथा रुद्र अप्रसन्न न होकर बल्कि प्रसन्नतापूर्वक ही वर मांगने को बरावर आग्रही बने रहे।

मनु तपस्याकाल में द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करते थे, इस मन्त्र के अधिष्ठाता भगवान् हैं न कि ब्रह्मा रुद्रादिक। ऐसी परिस्थिति में तीनों का आना ही परीक्षा के लिए था। भगवान् ने उपासकों के लिये कहा है कि " **वैष्णवः पुरुषो यस्तु शिवब्रह्मादिदैवतान्। प्रणमेदर्चयेद्वापि विष्ठायां जायते कृमिः।।"** अर्थात् वैष्णव यदि ब्रह्मा शिवादि अन्य देवताओं को प्रणाम या पूजा करे तो उसे विष्ठा का कीड़ा होना पड़ता है। अतः मनु उन सबों को प्रणाम नहीं कर सके अन्यथा कृमि भी होना पड़ता।

"सर्वत्रासौ समस्तञ्च वसत्यत्रेति वै यतः। ततश्च वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते।।
नमो भगवते नित्यं वासुदेवाय शार्ङ्गिणे।प्रणवेन समायुक्तं द्वादशार्णं मनुं जपेत्।।
ऐश्वर्यञ्च तथा वीर्यं तेजः शक्तिरनुत्तमा। ज्ञानं बलं यदेतेषां पराणां भग इतीरितः।।
गत्वा गत्वा निवर्तन्ते सर्वक्रतुफलैरपि। तद्गत्वा न निवर्तन्ते द्वादशाक्षरचिन्तकाः।।
प्रजापति कश्यपश्च मनुः स्वायम्भुवस्तथा। सप्तर्षयो ध्रुवश्चैते ऋषयस्तस्य कीर्तिताः।।
राज्यं इन्द्रपदं वापि शिवत्वं ब्रह्मतामपि।यं यं कामयते चित्ते तत्र तत्र नृपोत्तम।।
तां तां सिद्धिमवाप्नोति पदं चाप्नोति वैष्णवम्।।

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' यही द्वादशाक्षर मन्त्र है। ऐश्वर्य, वीर्य, तेज, शक्ति, ज्ञान, बल - इन छः गुणों को भग कहते हैं और इन्हीं छवों गुणों से युक्त होने के कारण परमात्मा को भगवान् कहते हैं। यज्ञादि द्वारा इन्द्रादि लोकों की प्राप्ति होती है किन्तु वहाँ से सबों का पतन होता है। किन्तु द्वादशाक्षर मन्त्र के जापक का कभी भी पतन नहीं होता है। प्रजापति, कश्यप, स्वायंभुमनु, शतरूपा, ध्रुव, सप्तर्षि आदि इस मन्त्र के जाप किये हैं। यह मन्त्र इच्छित फल को देने वाला है, अतः मनु इस मन्त्र के प्रभाव को जानकर ही - **"द्वादशाक्षर मंत्रवर जपहि सहित अनुराग। वासुदेव पदपंकरुह दम्पति मन अति लाग**।बा. 143।" इस मन्त्र को जपा करते थे। भगवान् के सभी मन्त्र सभी फलों को देने वाले होते हैं। तब रह गया भक्त के आधीन, जिस उद्देश्य से मन्त्र जपेगा सर्वज्ञ भगवान्

उसकी पूर्ति करते हैं। जैसे प्रह्लाद के लिये नृसिंहरूप धारण किया था। प्रह्लाद तो नृसिंह नाम तक नहीं जानते थे और न लिया था किन्तु भगवान् प्रह्लाद के कार्यार्थ अनुकूल रूप धारण किया।

मनु शतरूपा के तपस्या के प्रसंग में भगवान् जानते हैं कि वर्तमान सतयुग है, इसके बाद त्रेता में मुझे राम ही होना पड़ता है और ये दोनों वरदान में पुत्र ही मांगेंगे। अतः भगवान् ने रामरूप से ही अकेला पुनः दर्शन दिया, अन्य कोई कारण नहीं है। ऐसा दर्शन प्राप्त कर मनु वरदान में भगवान् को ही पुत्ररूप में मांगे और वही मिला भी। मनु की अनन्यता से हमलोगों को भी शिक्षा लेनी चाहिए कि इसी प्रकार की अनन्यता सबों में हो। यही अनन्यता जटायु और वाली आदि भी मांगे हैं।

'द्वादशाक्षर मन्त्रवर'इसका अर्थ कुछ लोग यह लगाते हैं कि षड़क्षर मन्त्र को मनु और शतरूपा दोनों जप करते थे। अतः दोनों को जोड़ देने से बारह अक्षर (द्वादशाक्षर)का मन्त्र बन जाता है। किन्तु ऐसी कल्पना यदि की जाय कि जापकों की संख्या के अनुकूल मन्त्राक्षरों की संख्या भी उतनी गुणित बढ़ती जाय तो कोई भी मन्त्र अनन्ताक्षर ही कहला सकता है। अतः ऐसी कल्पना में अनवस्थादोष हो जायेगा। अतः **'द्वादशाक्षर मंत्रवर'**इसका अर्थ वासुदेव मन्त्र ही ठीक है।

प्रार्थनाकाल में - **"पुर वैकुण्ठ जान सब कोई। कोई पयोनिधि बस प्रभु सोई।। हरिव्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम से प्रकट होहीं मैं जाना।**बा. 184।1, 3।" सभी देवगण परस्पर यह कहने लगे कि भगवान् वैकुण्ठ में रहते हैं, कोई क्षीरसमुद्र में, किसी ने कहा कि भगवान् सर्वत्र व्यापक हैं, केवल प्रेम से प्रकट होते हैं। परन्तु सोचना यह चाहिए कि भगवान् या ब्रह्म तो एक ही हैं चाहें उन्हें वैकुण्ठवासी कहें, क्षीरसमुद्रवासी या व्यापक ब्रह्म, इससे उनके एकत्व में कोई बाधा नहीं पहुंचती। उन्हीं को देवतालोग **'जय जय सुरनायक'** **'सिन्धुसुता प्रियकन्ता'** **'व्यापक परमानन्दा'** इत्यादि कहकर स्तुति किये हैं। और वही भगवान् बोले कि -

"अंशन सहित मनुज अवतारा। लैहों दिनकर वंश उदारा।बा. 186।1।" " **कश्यप अदिति महातप कीन्हाँ। तिन्ह कँह मैं पूरब वर दीन्हा।।ते दशरथ कौसल्या रूपा।कौशलपुरी प्रकट नरभूपा।।"** **"तिनके गृह अवतरिहौं जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई।।** **"नारद वचन सत्य सब करिहौं।**बा. 186।2, 3।" याने मैं अपने अंशों के साथ सूर्यवंश में अवतार लूँगा। कश्यप और अदिति भी पूर्व में महान् तप किये थे। उनको भी मैने वरदान दिया था। यही वर्त मान में दशरथ और कौसल्या हैं। उन्हीं के पुत्र रूप में चार भाई हो प्रकट होऊँगा। नारद का जो शाप था उसको भी पालन करूँगा। वही भगवान् -

"भए प्रकट कृपाला दीनदयाला कौशल्या हितकारी। हर्षित महतारी मुनिमनहारी अद्भुत रूप निहारी।।
लोचन अभिरामा तनु घन श्यामा निज आयुध भुजचारी। सो मम हित लागी जन अनुरागी प्रगट भये श्रीकन्ता।बा. 191 छंद।"
याने**'सिन्धुसुता प्रियकन्ता'** को बुलाये थे वही श्रीकन्ता प्रगट हुए। माता कौशल्या की प्रार्थना **'तजहु तात यह रूपा'** ऐसा कहने पर **'सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना होई बालक सुरभूपा'**भगवान् अपना पूर्व रूप छोड़ प्राकृत बालक हो रोने लगे। नारद के शाप को पालन करने के लिए विष्णु भगवान की प्रतिज्ञा थी और वही अवतार लिए। इसी से नारद जी कहते हैं कि **"मोर शाप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुःख भारा।**अर. 40। 3।" और श्री राम जी के सन्मुख नारद आकर पूछते हैं - **"जब विवाह चाहौं हम कीन्हा। प्रभु केहि कारण करै न दीन्हा।**अर. 42। 2।" हे

भगवान् ! जब मैं विवाह करना चाहा और आपसे सौन्दर्य मांगा तो आप मुझे कुरुप बनाकर क्यों विवाह करने से रोका था। यह प्रसंग विष्णुरूप का है। नारद के उत्तर में श्री राम जी कहते हैं - **"अवगुणमूल शूलप्रद प्रमदा सब दुःखखानी। ताते कीन्ह निवारण मुनि मैं अस जिय जानी।** अर. 44।" अर्थात् स्त्रियाँ सब अवगुणों की मूल होती हैं इसी से आपको रोका था। इन सब प्रसंगों में यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि श्री विष्णु ही श्री राम हुए और द्वादशाक्षर मन्त्र वासुदेव मन्त्र ही है न कि अन्य कोई।

मानस प्रसंग 6 ।**"जाके सुमिरन ते रिपुनाशा।नाम शत्रुहन वेद प्रकाशा**।बा. 196।4 ।" यह चौपाई मानस रामायण में रामावतार के पश्चात् नामकरण प्रसंग का है। इसका अर्थ यह है कि जिसके सुमिरण से शत्रु का नाश होता है वेद उसी को शत्रुघ्न ऐसा नाम बतलाता है। लोक में तो देखा जाता है कि जो आज किसी का शत्रु था वही कल मित्र भी बन जाता है। अथवा दो परस्पर शत्रुओं में जब एक की मृत्यु तब भी शत्रुता मिट जाती है। जैसे रावण के प्रति विभीषण की शत्रुता मिटी। कहा भी है 'मरणान्तानि वैराणि।' श्री राम जी विभीषण से कहे हैं कि हे विभीषण ! शत्रु से जीवन पर्यन्त ही शत्रुता रहती है, अतः अब रावण की अन्त्येष्टि क्रिया करो। इस प्रकार तो सब की शत्रुता मिट ही सकती है तो शत्रुविनाश से शत्रुघ्न नाम का क्या प्रयोजन ? किसी शत्रु के विनाशार्थ इस नाम का जप करना भी कहीं अनुष्ठानविधि में नहीं बतायी गयी है। वेद में भी इस प्रकार शत्रुघ्न जी का नाम कहीं नहीं पाया जाता और यह भी वशिष्ठ जी का रखा हुआ है, अतः निरर्थक भी नहीं हो सकता। इस विषय में वाल्मीकि जी कहते हैं **"शत्रुघ्नो नित्य शत्रुघ्नः** । बा. रा.अयो. 1।1 एवं उ. 68।11 ।" याने शत्रुघ्न जी नित्य शत्रुओं के नाश करने वाले हैं। भाव यह है कि संसार में बद्ध आत्मा के साथ जो जीवन मरण लगा हुआ है वही नित्य नाश रहित प्रधान शत्रु है। इसी शत्रु के नाशक शत्रुघ्न जी हैं यथा पद्मपुराण में कहा है **"शत्रुघ्नश्च महाभाग देवशत्रु प्रतापनः। सुदर्शनांशाच्छत्रुघ्नः संजज्ञेऽमित तेजशः**।प. पु. उत्तर 242।95-96।" अमित तेज वाले राक्षसों के नाशक सुदर्श न चक्र के अंश से शत्रुघ्न जी का अवतार है। इनके द्वारा जीवों के जीवन-मरण रूप महाव्याधि का नाश हो जाता है। इसी से सुदर्शन जी के नामकरण में लिखा है कि - **'संसारपाश विच्छेत्ता अर्चिरादिगतिप्रदः'** याने संसारबन्धन को नाश करके भगवत् प्राप्ति के अर्चिमार्ग को बताने वाले हैं। इसीलिए भगवत्प्रेमी लोग मुक्ति के लिए प्रेम से चक्र को धारण करते हैं। भगवान् के चक्र से द्वेषियों को भी मृत्यु होने पर मुक्ति मिलती है।

"येये हताः चक्रधरेण राजन् त्रैलोक्यनाथेन जनार्दनेन। ते ते नराः विष्णुपुरं प्रयाताः क्रोधोऽपि देवस्य चरेण तुल्यम्।। जिसको भगवान् मुक्ति देना चाहते हैं उसे चक्र से मारते हैं - जैसे ग्राह शिशुपालादि को। हिरण्यकशिपु को भगवान् केवल हाथ से मारे क्योंकि उसे आगे भी जन्म लेना है। इसी प्रकार रावण भी मरने पर आगे शिशुपाल रूप में जन्म लिया है और पुनः जब इसे चक्र से मारे तो इसकी मुक्ति हुई है। अतः भगवान् का क्रोध भी वर के तुल्य हो जाता है। भाव यह है कि मुक्तिप्राप्ति में चक्र प्रधान साधन है और यही चक्र शत्रुघ्न जी हैं।

शतपथ ब्राह्मण में **'तप्तं चक्रं द्विभुजे धार्यम्'** **'सायुज्यं सालोकतां जयति'** **'चक्रं बिभर्ति वपुषाभितप्तम्'**- यही चक्र (सुदर्शन) संसृतक्लेश (शत्रु) को नाश करते हैं। इसीलिए शत्रुघ्न कहे जाते हैं। इसी विषय को वशिष्ठ जी **'तापसंस्कारमात्रेण परां सिद्धिमवाप्नुयात्'** चक्र के स्पर्श मात्र से भगवत्प्राप्ति होती है। अन्यथा - **"जे मृग रामवान**

केमारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे।बा. 204।2।" भगवान् जिसे बाण से मारते हैं उसे मोक्ष नहीं होता बल्कि देवलोकादि की प्राप्ति होती है।

उक्त चौपाई में सुमिरण शब्द आया है जिसका अर्थ स्मरण होता है। भगवत्कृपाप्राप्त लोग चक्र को स्मरण करके धारण करते हैं और भगवान् चक्र को स्मरण करके उससे द्वेषियों को काट कर मोक्ष देते हैं। इसी अर्थ को लक्ष्य करके देशकालिक कवि तुलसीदास जी उक्त चौपाई को लिखे हैं। अन्यथा यह मिथ्या हो जायेगा।

संसार ही नित्य शत्रु है। शरीरसम्बन्धी शत्रु को तो श्री राम जी शत्रु मानकर विभीषण से रावण के सम्बन्ध में यों कहे हैं "**क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष तथा तव**।।" हे विभीषण ! यह जैसा तुम्हारा बन्धु है उसी प्रकार मेरा भी। इससे यह सिद्ध होता है कि दो विरोधियों में एक को मर जाने पर शत्रुता मिट जाती है, तो तदर्थ शत्रुघ्न नाम से क्या प्रयोजन ? सुदर्शन कवच में "**स्तनौ शत्रुनिषूदनः**।2।7।""**सर्वशत्रुक्षयकरं सर्वमंगलदायकं**।2।42।" ऐसे सर्वत्र शत्रुनाशक चक्र का नाम समझ वशिष्ठ जी ने सुदर्शन के अंश से उत्पन्न होने से शत्रुघ्न ऐसा नामकरण किया।"**शत्रु मित्र सुख दुःख जग माहीं।मायाकृत परमारथ नाहीं।कि. 6।9**।" व्यक्तिगत द्रोह रखने वाले मायिक द्रोही कहे जाते हैं और "**महा अजय संसाररिपु जीती सकै सो बीर।लं. 80**।" संसारसम्बन्धी आवागमनरूप नित्यशत्रु को जीतने वाला ही महावीर है।

"**स्वभावविजयं शौर्यम्**" अपने स्वभाव पर विजय पाना ही वीरता है। वह स्वभाव 'स्वयं भवतीति स्वभावः' शरीर के साथ ही उत्पन्न होता है। "**काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः**।गी. 3।37।" भगवान श्रीकृष्ण कहे हैं कि हे अर्जुन !यह स्वयं साथ रहने वाला रजोगुण से उत्पन्न काम क्रोधादि को शत्रु समझो, यही आत्मा का नाश करने वाला है इसे जीतो। यही नित्यशत्रु को नाशकरने वाला अस्त्रराज शत्रुसूदन शत्रुघ्न हैं, इनका स्मरण, पूजन, धारण करने से नित्य शत्रु का नाश होता है और तभी मुक्ति होती है। नहीं तो जव तक मुक्ति(संसार से निवृत्ति)नहीं होती तव तक शत्रु बना ही रहता है। इसलिए कहा गया है -

"भयागमे च संग्रामे वादे वा च स्मरेदिदम्।विजयस्तस्य हस्तस्थो नात्र कार्या विचारणा।।
तापत्रयविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते। नश्यन्ति शत्रवः सर्वेऽसुराणां बलसूदनम्।।
अभिचाराः परकृताश्चैनं प्राप्य च भीषिताः।प्रविशन्ति प्रयोक्तारमापगे वा चलाहता।।
ध्यातं सकृद् भवानेक कोट्यघौघं हरत्यरम्। सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो धीमहि।।"

भय, संग्रामवाद के समय जो इसे स्मरण करता है वह सर्वत्र विजयी होता है। सब तापों से मुक्त हो विष्णुलोक को चला जाता है। समस्त शत्रुओं तथा असुरों को नाश करने वाला यह अस्त्र अपने ध्यान करने वालों के समस्त पापों को नाश करता है, अतः मैं सुदर्शन चक्र के उस दिव्य तेज का ध्यान करता हूँ।

मानस प्रसंग 7। लक्ष्मण जी का नामकरण - "**लक्षणधाम रामप्रिय सकल जगत आधार।गुरु वशिष्ठ तेहि राखेउ लक्ष्मण नाम उदार**।बा. 197।" अनन्यशेषत्व अनन्यभोग्यात्व अनन्यपारतन्त्र्य चेतनों का लक्षण सिद्धान्त ग्रन्थों में बताया गया है। इन सभी गुणों के धाम स्थान लखनलाल जी हैं। "**अहं सर्व करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्च ते**।वा. रा. अयो.31।27।" लखन जी श्री राम जी के वनगमनकाल में कहते हैं कि मैं आपके जागे सोये सभी अवस्थाओं में सब कुछ करता रहूँगा। यही शेषत्व का लक्षण है। इसी विषय को स्वामी श्री यामुनाचार्य कहते हैं

"**निवासशय्यासनपादुकांशुकोपधानवर्षातप ...**।स्तोत्र रत्न 40।"अर्थात् निवास, शय्या, आसन, पादुकादि सब कुछ सभी अवस्थाओं में रहूँगा। शेषत्व का भाव युक्तियुक्त सर्वावस्था ही है, इसमें प्रलयकाल भी आ जाता है।लखनलाल प्रलयकाल में भी भगवान की उचित सेवा करते रहते हैं। संसारियों के हृदय में रहते रहते भगवान् अत्यन्त सन्तप्त हो जाते हैं। यथा "**कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्रामचेतसः। मां चैवान्तः शरीरस्थं...**।" अतः "तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्" भगवान् की ऐसी अवस्था में शेषजी क्षीरसमुद्र में अपने पेट में शीतल वायु भर शीतल एवं सुचिक्कन अपनी देह पर भगवान् को सुलाते तथा सहस्र मुखों के शीतल सुगन्धित वायु से शीतोपचार करते हुए हृदय के जलन को दूर करते हैं। इस प्रकार लक्ष्मण जी सदैव भगवान् के साथ रह उचित सेवा किया करते हैं। "**प्रथमोऽनन्तरूपश्च द्वितीयो लक्ष्मणस्तथा। तृतीयो बलरामश्च कलौ रामानुजौ मुनि**।" पर, व्यूह, वैभव तथा अर्चारूप में भी लक्ष्मण जी भगवान् के साथ ही रहते हैं, इसी से रामजी के प्रिय हैं। शेषत्व धर्म रामप्रिय होता है। "**रामस्य दक्षिणं बाहुः**।" लक्ष्मण जी रामजी के दाहिना हाथ के तुल्य हैं। जगत् के आधार होने में भी यही कारण है कि ब्रह्माण्डमात्र में भगवान् की व्यापकता है और भगवान् के निवासस्थान होने के कारण इस संसार के सभी बोझ शेष जी अपने मस्तक पर रखते हैं।

जैसे सोनार स्वर्णादि धातुमिश्रित कूड़ा कचरा या मोम को संग्रह रखता है, राजा इत्र तथा सुगन्धित वस्तु मिश्रित कपास को अपने कर्णादि में धारण करता है। यही सब उदारता इनमें है इसलिये ये रामप्रिय हैं। उदारता विशेष अर्थ यह है कि बिना मांगे भी अपनी वस्तु को जो आवश्यकता समझ कर वितरण करता हो। यह कार्य लखनलाल जब रामानुज हुए तो गोपनीय तथा उद्धारक मूलमन्त्र को जनकल्याण के लिए गोपुर पर चढ़कर उच्चस्वर से लोगों को सुनाया। कांचीपूर्ण स्वामी का वरदान प्राप्त कर संसार के सम्पूर्ण जड़ तथा चैतन्यों को अपना समझ स्पर्श करते हुए कल्याणभागी एवं शरणागति धर्म के प्रचारार्थ सर्वत्र घूमना तथा भगवत्परत्व ग्रन्थ का निर्माण कर संसारसागर से पार होने के लिए जहाज बना लोगों का परम कल्याण किया।

लक्ष्मण नाम में ही परमोदारता है क्योंकि इसी में रामानुजत्व है। रामस्य श्री दासरथी रामस्य अनुजः रामानुजः (लक्ष्मणः) यह भगवत्स्वरूप का बोधक है। लक्ष्मण जी त्रेता में रामजी की अटूट सेवा किये जिसकी प्रसन्नता में द्वापरयुग में भगवान् ही उनके छोटे भाई हुए। "रामस्य बलरामस्य अनुजः रामानुजः (श्रीकृष्णः) यह परस्वरूप का बोधक हुआ। '**कलौ रामानुजो मुनिः**' शेष (लक्ष्मण) कलियुग में रामानुज ही भगवद्धर्म का प्रचार कर आचार्यपद प्राप्त किया। इस प्रकार रामानुज कहने से भगवान् भागवत और आचार्य तीनों का योग होता है। अतः लक्ष्मण यह नाम परमोदारता पूर्ण है। "**लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः...**।वा. रा. बा. 18।27।" लक्ष्मी (रामजी की सेवा) वर्द्धक लक्ष्मण हैं।

आधार नीचे रहता है, इसी भाव को ध्यान में रख, वशिष्ठ नामकरण में सभी भाइयों से पीछे लक्ष्मण जी का नामकरण किये हैं क्योंकि लक्ष्मण विश्वमात्र के आधार हैं। अथवा लक्ष्मण बिना रामजी कल्याण नहीं करते याने लक्ष्मणमन्त्र बिना केवल राममन्त्र से कल्याण नहीं होता है। "**लक्ष्मणस्य मनुर्जप्यो मुमुक्षुभिरतन्द्रितैः। अजप्त्वा लक्ष्मणमनुं राममन्त्रान् जपन्ति ये। न तेषां जायते सिद्धिर्हानिरेव पदे पदे। यो जपे लक्ष्मणमनुं नित्यमेकान्तमास्थितः। मुच्यते सर्व पापेभ्यः सर्वान् कामानवाप्नुयात्।। जपप्रधानमन्त्रोऽयं राज्यप्राप्त्यैक साधनम्**।। जो लक्ष्मण मन्त्र के बिना केवल राममन्त्र

को जपता है उसे सिद्धि प्राप्त होना तो दूर रहा पग पग पर हानि ही होती है। इसलिये मुमुक्षुओं को मोक्ष के लिए पापात्माओं को पाप से छूटने के लिये लक्ष्मणमन्त्र सहित राममन्त्र का जाप करना चाहिए। अन्यथा लक्ष्मणमन्त्र के बिना राममन्त्र, एकाक्षर, द्वयक्षर, त्र्यक्षर या जितने भी अक्षर का हो सभी व्यर्थ होते हैं। इसीलिए लक्ष्मण को लक्षणधाम कहा गया है। इसी भाव को लेकर "**बन्दौ लक्ष्मण पद जलजाता।शीतल सुभग भक्त सुखदाता**।बा 16।3।" में जलजात याने कमल तो स्वतः शीतल होता ही है फिर उसका विशेषण शीतल क्यों दिया गया ? इसका भाव यही है कि लखनजी शेष होने के कारण अत्यन्त शीतगुणयुक्त हैं, भक्तों के त्रितापों को नाश करते हैं। **"रामस्य दक्षिणं बाहुः"** लखनजी रामजी के दक्षिण बाहु के सदृश अत्यन्त प्रधान हैं। जैसे अंग के बिना अंगी कोई कार्य सिद्ध नहीं करता इसी प्रकार श्री राम जी बिना लक्ष्मण के कल्याण नहीं करते।

मानस प्रसंग 8। "**विनयप्रेम वश भई भवानी। खसी माल मूरति मुसकानी**।बा. 235।3।" यह चौपाई बालकाण्ड सीता जी के गिरिजापूजन प्रसंग की है। इसके अर्थ में रामायणियों में मतभेद पाया जाता है। (1) कुछ लोग पूजामन्दिर में गौरी और शंकर दोनों की मूर्ति मानते हैं। (2) कोई गौरी के आधे मस्तक से माला गिरी यह मानते हैं। (3) कोई गौरी के हाथ से माला गिरी यह मानते हैं। (4) कुछ लोग जानकी के हाथ से माला गिरी यह मानते हैं। (5) कुछ लोग मूर्तिमुस्कान को अनिष्ट मान, यह कहते हैं कि इसका अनिष्ट फल यह हुआ है कि जनक की लक्ष्मी जनकपुर से अयोध्या चली आयी इत्यादि अनेकानेक विवाद पाया जाता है।

Oउपर्युक्त प्रसंग के विवेचन में मानस में केवल गौरीपूजन प्रसंग का ही प्रमाण मिलता है, शंकर का नहीं।यथा - "**गई भवानी भवन बहोरी।234।2।**" "**सरसमीप गिरिजा गृह सोहा...227।2।**" "**गई मुदित मन गौरी निकेता...227।3।**" इन चौपाइयों में भवानी भवन, गिरिजा गृह, गौरी निकेत - ये ही पद आये हैं। तथा '**गिरिजा पूजन जननी पठाये**'- माता जानकी को गिरिजा की पूजा के लिये ही पठाई है न कि गौरीशंकर की। यहाँ पर रामाणियों का यह कहना है कि उस मन्दिर की मूर्ति में एक ओर गौरी दूसरी ओर शंकर की मूर्ति थी। इसलिए सीता जी माला पहनाते समय यह सोचने लगी कि यदि मैं माला इस मूर्ति के गले में पहराऊँ तो शंकर के गले में भी माला पड़ जायेगी, जो मेरे लिए सर्वथा अनुचित होगा। इसलिए मूर्ति के आधे कपाल पर गौरी की ओर से लगा दी तो वह माला बिना आधार के खिसक कर नीचे गिर आई। और यही सीता की हृदयस्थ भावना समझ कर गौरी की मूर्ति मुस्काई है। किसी का कहना है कि परपति को माला पहनाना अनुचित है किन्तु यह तो सीता जी को नहीं सोचना चाहिए क्योंकि यह तो जगत् जननी हैं केवल लीला के लिए ही अवतार धारण किया है तो लीला में किसी को माता पिता या देवी देवता मान यदि पूजा करेगी हीं तो इसमें क्या क्षति होगी ? अर्थात् कुछ भी नहीं। अतः माला पहराने में भी पतिभाव नहीं होता यह उनकी भूल समझकर मूर्ति हँसी है। परन्तु यह कहना निर्मूल है - कारण कि उस मन्दिर में केवल गौरी की ही मूर्ति थी। अथवा सभी स्त्रियों को सभी देवी देवताओं के पूजने का अधिकार है जो कुलपरम्परया सभी गृहस्थियों के घर में पाया जाता है। यदि कुछ भेद होता तो सीता को उसकी माँ या साथ की कुशल सखियाँ अवश्य पूजनोपचार में बतातीं किन्तु ऐसा नहीं हुआ है।

Oकुछ लोग जानकी के हाथ से ही माला गिरना मानते हैं। यह भी उचित नहीं कारण कि **"पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा।**बा. 227।3।" यहाँ पर पूजा कीन्ह यह क्रियापद क्रिया का पूर्ण समाप्तिबोधक है और माला पहराना पूजन मध्य की क्रिया है और पूजन समाप्त कर सीता गौरी की प्रार्थना कर रही है तभी **"विनय प्रेम वश..."** इत्यादि पद आये हैं।

O जो कोई यह कहते हैं कि प्रसन्न हो जब जानकी को माला पहराने लगी तो माला हाथ में लेते ही उन्हें यह स्मरण आया कि **"चली राखि उर श्यामल मूरति।**बा. 234।1।" याने जानकी के हृदय में मूर्तिमान श्री राम जी विद्यमान हैं, अतः इस माला को जानकी को पहनाती हूँ तो श्री राम जी के गले में पहनाना होगा, ऐसा जानकर पार्वती माला गिरा दी तो इसी भाव को समझ जानकी के हृदयस्थ श्री राम मूर्ति मुस्काई है। किन्तु इस कल्पना के ऊपर विचार करने से स्पष्ट होता है कि यदि सीता के हृदय में श्री राम मूर्ति हैं तो सीता बाह्य मन्दिर हुई और इनको माला पहरान से हृदयस्थ मूर्ति को माला पहराना कैसे हो सकता है। जैसे मन्दिर के ऊपर चक्र त्रिशूल ध्वजा आदि जो गाड़े जाते हैं वह मूर्ति के माथे पर गड़ा नहीं कहा जाता है। या मन्दिर के ऊपर काकादि बैठने का दोष नहीं माना जाता। या मन्दिर के ऊपर वर्षादि होने पर भी मूर्ति के ऊपर वर्षा हुई ऐसा नहीं कहा जाता। इसलिए गौरी के हाथ से माला गिरने में उक्त भाव को मानना भी युक्ति के विरुद्ध है।

O मूर्ति को हँसने के प्रसंग में जो कोई यह कहते हैं कि मूर्ति का हँसना अनिष्ट फलदायक होता है। जैसे **"जनक सुकृति मूरति वैदेही।**बा. 309।1।" जनक की सुकृति (लक्ष्मी) उनके घर से चली आयी हैं, तो यहाँ यह विचारना चाहिए कि प्रथम तो स्तब्ध मूर्ति के सम्बन्ध में हँसना रोना अनिष्ट माना जाता है किन्तु यह पार्वती की मूर्ति तो बोलने वाली थी। यथा - **"सुनि सिय सत्य असीस हमारी।पूजहिं मनकामना तुम्हारी।। नारद वचन सदा शुचि साँचा। सो वर मिलहि जाही मन राँचा।**बा. 235।4।" हे सीते ! सुनो तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी। नारद का वचन सदा पवित्र और सत्य है। इस प्रकार बोलने वाली मूर्ति का हँसना अनिष्टकर नहीं हो सकता। अथवा कन्याओं को पति के घर जाना तो सभी शुभ मानते हैं और इस उत्साह में देवी देवताओं की पूजा करते हैं। बल्कि युवती कन्याओं के पति के घर न जाने देना ही अमंगल या पाप समझा जाता है यही शास्त्रीय विचार है। यह कोई भी नहीं चाहता कि मेरी कन्या पतिगृह में न जाये। इस नियम के अनुसार मूर्ति के हँसने से जानकी को अयोध्या आना, जनक के लिए अमंगल हुआ यह नहीं कहा जा सकता। बल्कि जनक के लिए शुभ हुआ कि जानकी का विवाह या धनुष टूटने की चिन्ता उनकी दूर हो गयी और सीता का विवाह हो गया।

O जो कोई यह कहते हैं कि जानकी या गौरी अपने हाथ से माला गिरा दी हैं यह भी अनुचित ही प्रतीत होता है क्योंकि उक्त पद में खसी क्रिया की कर्त्री माला है न कि गौरी या सीता। यदि इन दोनों में से कोई एक कर्त्री होती तो खसी क्रिया के स्थान पर खसाई ऐसी प्रेरणार्थक क्रिया दी जाती। अतः यह सिद्ध होता है कि माला स्वयं खसी है किसी ने खसाई नहीं है। अब रह गयी बात कि माला अपने आप खसी तो कहाँ से और कैसे खसी (गिरी) है तथा उक्त चौपाई का युक्तिसंगत अर्थ क्या होगा ?

यह मूर्तिपूजन का प्रसंग है। जानकी जी जब गौरी का सम्यक् प्रकार से पूजन कर प्रार्थना कर रही हैं तो इनकी विनम्रतापूर्वक पूजा प्रार्थना से गौरी अतिप्रसन्न तथा प्रेमवश होकर अपने गले की माला स्वयं हाथों में ले

सीता जी के गले में पहराना चाहती थीं किन्तु उस समय सीता जी के प्रेम में विवश होने के कारण अपना कर्त्तव्य भूलकर सुधि बुधि भी भूल गयीं। जिसके कारण अपना प्रसादस्वरूप जो सीता जी को देना चाहती थी वह हाथो से छूटकर भूमि पर गिर गयी। किन्तु माला गिरते ही जब गौरी की सुधि जगी सीता को माला पहरानारूप कर्त्तव्य से वंचित रह जाने पर स्वयं हँसी आ गयी कि मैं सीता को माला नहीं पहरा सकी। किन्तु इस अवसर पर सीता जी गौरी के हृदय का भाव समझकर प्रसादरूप गिरी हुई माला को उठाकर गले में धारण कर लिया। यथा - **"सादर सिय प्रसाद उर धरेऊ। बोली गौरी हर्ष हिय भरेऊ।**बा.235।3।" माला धारण करते देख गौरी प्रसन्न हृदय से सीता जी को आशीर्वाद देती हैं। **"सुनु सिय सत्य अशीष हमारी। पूजहिं मनकामना तुम्हारी।** बा. 235।4।" यह आशीर्वाद सुनकर जानकी जी के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा तथा मंगल सूचक बायाँ अंग फरकने लगा।

मानस प्रसंग 9।

"अनुरूप वर दुलहिन परसपर लखि सकुचि हिय हर्षहिं। सब मुदित सुन्दरता सराहहिं सुमन सुरगण वर्षहिं।।

सुन्दरी सुन्दर वरन वर सह एक मण्डप राजहिं।जनु जीव अरु चारिउ अवस्था विभुवन सहित विराजहिं।बा. 324।छंद 4।"

यह श्री राम जी के विवाह काल का प्रसंग है। विवाहमण्डप में दशरथ जी के सामने चारों वत तथा चारों दुलहिन विराजमान हैं। ऋषि महर्षि देवगण जनकपुरवासी तथा अयोध्या के वशिष्ठादि महर्षियों की तथा अन्यान्य दर्शकों की अपार भीड़ है। सभी लोग चर्मचक्षु तथा दिव्य चक्षुओं से दर्शन का लाभ उठा रहे हैं। याने ऐश्वर्य - माधुर्य दोनों का अवलोकन कर रहे हैं। जनकपुरवासी प्रेम से भगवान् के केवल माधुर्यरसपान कर तृप्त हो रहे हैं। **"जाकी रही भावना जैसी। प्रभुमूरति देखहिं तिन तैसी।**बा. 240।2।" श्री राम जी श्यामल मूर्ति हैं।

"नीलसरोरुह नील मणि नील नीरधर श्याम।अंग अंग पर वारिये कोटि कोटि शतकाम।बा. 146।" जिनसे नीलकमल ने कोमलता प्राप्त किया है, नीलमणि कान्ति और नीलमेघ शोभा प्राप्त किया है, जिनके अंग अंग की शोभा के सामने करोड़ों करोड़ कामदेव की शोभा फीकी पड़ जाती है। **"इनसे लहि द्युति मरकत सोने।**अयो 115।4।" इनसे ही मरकत मणि कान्ति प्राप्त किया है।

"अप्रमेयो हि तत्तेजः।।" "सबकर परम प्रकाशक सोई।बा. 116।3।" **"यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्**।गी. 15।12।" **"एष हिरण्यपुरुषो दृश्येत।।"** जिसके प्रकाश से सूर्य चन्द्रमा आदि प्रकाशित होते हैं। यह हिरण्यमय पुरुष सूर्य के बीच में रहकर उसको प्रकाशित किया करता है। **"न तस्य प्राकृतिः मूर्तिः मांसमेदोऽसि संभवः"**जिसकी मूर्ति मांस मेदादि प्रकृतिरचित नहीं है। **"आप प्रगट भये विधि न बनाये।।""यतो वाचा निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह**।तैत्तिरिय संहिता ब्रह्मांडवल्ली 2।4।" जिनको वर्णन करते करते अवर्णनीय जानकर मन के साथ वाणी भी लौट आती है अर्थात् मन और वाणी द्वारा भी वह अप्राप्य है। **"तरकि न सकहिं बुद्धि मन वानी**।लं. 73।1।" अर्थात् श्री राम जी परब्रह्म हैं - **"ब्रह्म वर परिछन चली**।बा. 317 छंद।"

इसी प्रकार सीता जी भी **"हिरण्यवर्णां ...। चन्द्रां प्रभासां ज्वलन्तीं ...।आदित्यवर्णे...। चन्द्रां हिरण्यमयीं...। सूर्यां हिरण्यमयीं ...**।श्रीसूक्त।**"हिरण्यस्य हिरण्ये वा कान्तिः(प्रकाशः)यस्याः यया वा"** अर्थात् सोना जिससे कान्ति प्राप्तकर कान्तिमान है। इसी से सोना को भी लक्ष्मी कहते हैं और सबका प्यारा भी है। सूर्य चन्द्रमा जिसके प्रकाश से

प्रकाशित होते हैं। **"जगत् जननी अतुलित छबि भारी**।बा. 247।1।" **"इनसे लहि द्युति मरकत सोने**।अयो. 115।4।" श्री राम जी से मरकत मणि और सीता जी से सोना कान्ति प्राप्त किया है। इन दोनों के सम्बन्ध में वाल्मीकि जी कहे हैं - **"अहं वेदिम महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम्।वशिष्ठोऽपि महातेजाः ये चेमे तपसि स्थिताः**।वा.रा.बा.19।14।" मैं श्री राम जी को जानता हूँ और महातेजस्वी तपस्वी वशिष्ठादि भी जानते हैं। क्या जानते हैं - **"...न त्यजेयं कथंचन।दोषो यद्यपि तस्य स्यात्...**।वा.रा.युद्ध.18।3।" श्री राम जी दोषी को भी शरण देते हैं और सीता जी **"कश्चिन्नापराध्यति**।वा.रा. युद्ध. 113।45।" अर्थात् आश्रितों का कोई अपराध नहीं होता यह कह कर शरण दिलवाती हैं।

श्री राम जी सभी दिव्यगुणों से युक्त हैं। आश्रितों की रक्षा और जगत् के कल्याण के लिए दोनों जगन्माता जगत्पिता अवतार लिया करते हैं। **"रामरूपे भवेत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि""नित्यमेषानपायिनी"**(कभी भी पृथक न होने वाली)लक्ष्मी रामावतार में सीता और कृष्णावतार में रुक्मिणी होती हैं। जैसे जन-मन-हर्षक आकर्षक श्री राम जी हैं उसी प्रकार श्री सीता जी हैं। इसीलिए उपरोक्त छन्द में अनुरूप शब्द आया है। सर्वत्र तुल्य अर्थ बताने के लिए ही अनु उपसर्ग का प्रयोग होता है। माता पिता जैसे बड़े पुत्र को उत्पन्न करते हैं वैसे ही छोटे को भी। अतः उसको अनुज कहते हैं। **"जिमि पुरुषहिं अनुसर परिछाहीं**।अयो. 140।3।" पुरुष के सदृश उसकी छाया भी चेष्टा किया करती है। इसलिये अनु उपसर्ग लगाया गया है। श्री राम जी और श्री सीता जी की अत्यन्त सदृश्यता बोध कराने के लिए अनुरूप शब्द का प्रयोग किया गया है।

अथवा लक्ष्मी जी श्रीरूप से भगवान् की शोभा बनकर सुशोभित करती रहती हैं। ऐश्वर्य बनकर श्रीमन्त बनाया करती हैं और कान्ति बनकर कान्तिमान बनाया करती हैं। इसीलिए भगवान् इनकी प्राप्ति के लिए स्वयं समुद्र मन्थन या बन्धन किये करवाये हैं। **"हरधनुरसौ"**लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए धनुष भी तोड़ा गया है। लक्ष्मी भगवान् को अत्यन्त प्रिय हैं इसीलिये भगवान् उनको अपने वक्षस्थल में रखा करते हैं। **"तद्वक्षस्थल नित्यवास रसिकाम्**।।" इसी प्रकार लक्ष्मी की शोभा को भगवान् बढ़ाने वाले हैं - **"कः श्रीः श्रियः**।" अर्थात् राम और जानकी एक दूसरे की परस्पर शोभा को बढ़ाने वाले हैं। **"जानकी हृदय मम वास है**।लं. 98।छंद।"लक्ष्मी के हृदय में भगवान् वास करते हैं। यही अन्योन्याश्रय होने के कारण ऊपर परस्पर शब्द आया है। जैसे लक्ष्मी सबों के प्रिय हैं वैसे ही भगवान् भी सबों के प्रिय हैं - **"ये सब प्रिय जहाँ लगि प्राणी**।बा. 215।4।" प्राणी मात्र के ये दोनों प्रिय हैं। भगवान् के द्वारा लक्ष्मी सबों के प्रिय हैं और लक्ष्मी के द्वारा भगवान्। याने भगवान् की कृपा बिना लक्ष्मी नहीं मिलती हैं और लक्ष्मी की कृपा बिना भगवान् नहीं मिलते। यह परस्परता के भाव हैं।

अथवा वर कन्या दोनों व्यापक तत्व हैं **"यथा सर्वगतः विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम**।वा.रा. ।" जैसे विष्णु व्यापक हैं उसी प्रकार लक्ष्मी की भी व्यापकता है। रामजी के प्रति सीता जी कहीं हैं - **"अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा**।वा.रा. सु. 21।15।" सूर्य की प्रभा जैसे सूर्य के साथ रहती है उसी प्रकार भगवान के साथ मैं रहने वाली हूँ। राम जी भी यही कहते हैं - **"अनन्या हि मया सीता**।वा. रा. लं. 118।19।" सीता मुझमें अनन्यभाव से रहती है। इस अन्योन्याश्रय को दोनों स्वीकार करते हैं। लीलाकाल में भी लक्ष्मी मूर्ति बनकर हृदय में और रेखा बनकर शरीर में रहती हैं। अर्थात भगवान् के वक्षस्थल की रेखा लक्ष्मी के चिह्न हैं। इस प्रकार सतत साथ रहते हुए भी

छः वर्ष के लिये दोनों का वियोग हुआ है। जानकी इस समय जनक के यहाँ हैं, जनक की प्रतिज्ञा में कठोर धनुष का तोड़ना है - **"विवाह चाप आधीना।**बा. 285।4।" और वह भी कण्टक दूर हुआ। जब राम और सीता दोनों एक मण्डप में मिले हैं यही तो हर्ष का कारण है। और संकोच है कि **"आत्मानं मानुषं मन्ये।**वा. रा. युद्ध 117।11।" अर्थात् परब्रह्म तथा जगत के माता पिता होते हुए भी सभी लौकिक व्यक्तियों के सामने साधारण प्राकृत वर कन्या रूप में बैठे हुए हैं।सभी दर्शक परम माधुर्यरस पान करने में मग्न हैं। इन दर्शकों में ब्रह्मा वाल्मीकि आदि कुछ विशिष्ट व्यक्ति मेरे परत्व को जाननेवाले हैं तो शायद ये लोग इस परत्व को सर्वसाधारण में न फैला दें जिससे माधुर्य रस भंग हो जायेगा क्योंकि माधुर्य रस की अपेक्षा ऐश्वर्य न्यूनकोटि का है, इसलिए भी संकोच हो रहा है।

अथवा ऐसा संकोच करना मर्यादापुरुषोत्तम के लिए उचित भी है जो मर्यादा की रक्षा तथा औरों के उपदेश के लिये भी है। इस अवसर पर देवगणों को संकोच हो रहा है। क्योंकि लोक में जैसे बाप के विवाह में बेटा को संकोच होता है तथा बेटा पिता के मंगल बाराती में अतिसंकुचित हो सम्मिलित होता है या सम्मिलित ही नहीं होता। यही संकोच ब्रह्मादि देवगणों को भी हो रहा है याने हम सबों के निर्माता तथा जगत् के माता-पिता आज हमलोगों के सामने वर-दुलहिन बनकर विवाह साज सज कर बैठे हैं। ऐसे अवसर पर हम सबों को भी पूजवाना तथा आशीर्वाद देना पड़ेगा, इसी से संकुचित हैं। और हर्ष इस बात का है कि इस तरह कौतुक उत्साह, आमोद-प्रमोद, सौंदर्य, माधुर्यादि कभी भी देखने को नहीं मिला, यह प्रथम बार का सुअवसर है, इसी से सबों को हर्ष हो रहा है। अतः पुष्पवृष्टि कर रहे हैं।

अथवा ब्रह्म का अवतार तो बहुत बार हुआ किन्तु विवाह तो इसी अवतार में प्रथम बार हो रहा है जो अवसर हम सबों को आज देखने को मिला है। तथा जिनको अवतार लेने के लिए हम सब प्रार्थना किये थे वही आज हम सबों के सामने उपस्थित हैं। ताड़कादि को मार चुके, विवाह होने में धनुष तोड़ना बाधक था सो भी समाप्त हुआ, अब तो विवाह के बाद शीघ्र रावणादि का वध होगा जिससे हमलोग निर्द्वन्द हो जायेंगे।

जनकपुर विवाहमण्डप में दशरथ जी के सामने चारों दुलहिनों के साथ चारों दुलहा विराजित हैं। अतः मालूम पड़ता है कि जैसे जीव को अपने विभुओं (पतियों) के साथ चारों अवस्था - जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय (मुक्ति) प्राप्त हो गयी है। विभु का अर्थ व्यापक और पति दोनों है। इन अवस्थाओं के विभुओं के सम्बन्ध में **"वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम्। अनिरुद्ध इति ब्रह्म मूर्तिव्यूहोऽभिधीयते।। स विश्वतैजसः प्राज्ञस्तुरीय इति वृत्तिभिः।।"** जाग्रत अवस्था के विभु (अभिमानी देव) प्रद्युम्न, स्वप्नावस्था के संकर्षण, सुषुप्ति अवस्था के अनिरुद्ध और तुरीय अवस्था के वासुदेव हैं। जाग्रत अवस्था का व्यापार सम्पूर्ण देह-मन-इन्द्रियों का, स्वप्नावस्था का व्यापार केवल मन का, सुषुप्ति अवस्था का व्यापार वासनामात्र और मुक्ति अवस्था का व्यापार दिव्य देह, ज्ञान और दिव्य इन्द्रिय का है। इस अवस्था में श्रीमन्नारायण से योग होता है। इस विवाह प्रसंग में तुरीयावस्था श्री जानकी जी का है और विभु (पति) श्री राम जी हैं। जाग्रत् अवस्था माण्डवी हैं और विभु भरत जी हैं। स्वप्नावस्था उर्मिला हैं और विभु लक्ष्मण जी हैं। सुषुप्ति अवस्था श्रुतिकीर्ति हैं और विभु शत्रुघ्न जी हैं। तुरीय अवस्था में संसारी वस्तु और अपना शरीर पर्यन्त भी भूल जाता है। जैसे ध्रुव को हुआ था **"...तस्थौ स्थाणुः इव**

अचलः।भा 4।8।76।" भगवान् में ध्यान लगाये ध्रुव जड़ की तरह दीखते थे। इसी अवस्था को जीवन्मुक्त भी कहते हैं और पंचम पुरुषार्थ भी कहते हैं। अर्थात् इस अवस्था में धर्म अर्थ काम मोक्ष के अलावा भगवान् का विलक्षण अनुभव प्राप्त होता है "**को हम कहाँ विसरी तनु गये**।उ. 16।1।" जैसे ब्रह्म प्राप्ति में ब्रह्मानन्द सुख मिलता है वही आनन्द सुख इस अवस्था में भी मिलता है।

"भद्रमुक्तं भवद्भिस्तु मुक्तिस्तुर्यात्परात्परा। निवहं यत्र चित्सत्ता तुर्या च मुक्तिरुच्यते।।
पूर्णाहं तामयीं भक्तिस्तुर्यातीता निगद्यते। मुक्तानामपि भक्तिर्हि परमानन्दरुपिणी।।"

इस प्रकार तुरीयावस्था को मुक्ति अवस्था कहते हैं। वही अवस्था प्राप्त करना पूर्ण भक्ति का फल है। क्योंकि यहाँ से मुक्त होकर भी त्रिपादविभूति में वही भक्ति की जाती है। इसलिये भी इसको मुक्ति अवस्था कहते हैं। इस अवस्था को प्राप्तकरने वाला व्यक्ति से बढ़कर दूसरा कोई व्यक्ति नहीं। इसी अवस्था में आत्मसत्ता लाभ होता है। "**देखि भानुकुल भूषणहिं विसरा सखिन अपान**।बा. 233।" "**प्रेम मगन मन सुधि नहीं तेहीं**।सु. 14।4।"
"**को मैं चलेऊ कहा नहीं बूझा।**""**कबहुँक फिरि पाछे मुनि जाई।**" "**मुनि मग माँझ अचल होई वैसा।पुलक शरीर पनस फल जैसा।।**" "**मुनिहिं राम बहुभाँति जगावा। जाग न ध्यान जनित सुख पावा**।अर. 9।6-9।" यह सब तुरीयावस्था का लक्षण है। मुक्त होने पर यही विलक्षण प्रेम परमात्मा में हुआ करता है।

यहाँ पर मण्डपस्थानीय शरीर है, दशरथस्थानीय जीव है, अवस्था दुलहिन स्थानीय है और चारों दुलहे स्थानीय चारों विभु हैं। किन्तु जीव को चारों अवस्थायें एकबार नहीं प्राप्त होतीं और दशरथ को उन चारों का संयोग एक ही बार यहाँ हुआ है। यह उत्प्रेक्षा आश्चर्य अलंकार है। इसी प्रकार दूसरे दोहे में भी इसी तरह की उपमा दी गयी है।

मानस प्रसंग 10।

"**मुदित अवधपति सकल सुत वधुन समेत निहारी।जनु पायेऊ महिपाल मणि क्रियन सहित फलचारी**।बा. 325।" दशरथ जी पुत्रवधुओं के साथ पुत्रों को देखकर ऐसे आनन्दित मालूम पड़ रहे हैं मानों चारों क्रियाओं के साथ चारों फल प्राप्त किये हों। यहाँ पर प्रश्न यह होता है कि केवल एक भक्तिरूप क्रिया करने से चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) प्राप्त हो जाते हैं तो पुनः अन्य क्रिया करने से क्या प्रयोजन ?

उत्तर - जैसे चार भाइयों का जन्म चार रूप देह देह में होने पर भी भिन्न नहीं है, यथा - "**अंशन सहित मनुज अवतारा। लेइहौं दिनकर वंश उदारा**।बा. 186।1।" इसी प्रकार भक्ति के साथ श्रद्धा, दया, और क्षमा भी रहती है। दशरथ जी को जैसे अपने अंशों (भाइयों) के साथ श्री राम जी मिले हैं इसी प्रकार भक्ति(श्रीजानकी) के साथ उर्मिला, माण्डवी और श्रुतिकीर्ति अवतार लीं तथा ब्याही गयीं। यही भक्ति के साथ दया, श्रद्धा और क्षमा क्रिया साथ रहती हैं। यह कोई नहीं जानता था कि श्री राम जी के साथ चारों भाइयों का विवाह होगा किन्तु अनायास होकर ही रहा। इसी प्रकार मोक्ष के साथ अर्थ, धर्म और काम भी अनायास मिल ही जाता है और भक्ति के साथ श्रद्धा, दया और क्षमा प्राप्त हो जाती है। इसीलिए ज्ञानी लोग श्री राम जी में केवल भक्ति किया करते हैं तथा दूसरों को भी बताया करते हैं जिससे लोगों का कल्याण हो। "**भक्ति स्वतंत्र सकल गुणखानी।तेही मणिबिनु सुखपाव न प्राणी।**।उ. 44।3।" "**तेहि मणि बिनु सुख पाव न कोई।**।उ.119।4।" "**न तपोभिर्न वेदैश्च न ज्ञानेनापि कर्मणा। हरिर्हि साध्यते**

भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिका।।" भगवत् प्राप्ति के लिए वेदाध्ययन तप ज्ञान तथा यज्ञादि साधन अपेक्षित नहीं हैं अपितु केवल एक भक्ति मात्र से ही भगवान् मिलते हैं।

> **"सकल भुवन मध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्याः निवसति हृदि येषां श्री हरेर्भक्तिरेका।**
> **हरिरपि निजलोकं सर्वथातो विहाय प्रविशति हृदि तेषां भक्ति सूत्रोपनद्धः।।"**

जिनके हृदय कमल में भगवान् की एक अनन्य भक्ति रहती है वह दरिद्र भी धन्य है और संसार में सबसे बड़ा है क्योंकि उसके लिए भगवान् अपना लोक छोड़कर भक्ति सूत्र में बंधे हुए सदा भक्त के हृदय में रहते हैं। मुक्ति अवस्था के पति देवता विभु श्री राम जी हैं, धर्म के विभु भरत जी हैं। "**जो होत जग जनम भरत को।सकल धरम धुर धरनि धरत को**।अयो. 232।1।" "**सिर भरि जाऊ उचित अस मोरा। सबसे सेवक धर्म कठोरा**।अयो.202।।" "**भरत ही धर्म धुरंधर जानी**।अयो.258।1।" इत्यादि बचनों के द्वारा भरत को धर्म का अधिनायक होना सिद्ध होता है।

काम के विभु लक्ष्मण हैं - काम हाथों से ही किया जाता है और लक्ष्मण भी भगवान् के हाथ के तुल्य हैं - '**रामस्य दक्षिणं बाहुः।**' "**अहं सर्व करिष्यामि जाग्रतः स्वपतश्चते**।बा.रा.अयो.31।27।" इसीलिए सूर्पनखा का नाक-कान लक्ष्मण द्वारा काटे जन पर भी वाल्मीकि राम जी को ही कर्त्ता सिद्ध किये हैं।

अर्थ के विभु शत्रुघ्न हैं। अर्थ पा जाने से संतोष हो जाता है। या अर्थ किसी को नहीं खोजता फिरता तटस्थ रहता है, ऐसे ही शत्रुघ्न जी शान्त हैं कहीं कुछ भी नहीं बोले हैं। भगवान्, दशरथ जी के पुत्र होकर पूर्व तपस्या का फल दिया। किन्तु भगवान् में भक्ति नहीं होने के कारण उन्हें मोक्ष नहीं मिला। इसलिए छन्द में 'जनु' शब्द आया है अतः मानों मिला हो ऐसा अर्थ होता है।

मानस प्रसंग 11।

> "**मिलत महा दोउ राज विराजे।उपमा खोज खोज कवि लाजे।।**
> **लही न कतहु हारि हिय मानी।इन सम यह उपमा उर आनी।।**
> **समधि देखि देव अनुरागे।सुमन वरषि यश गावन लागे।।**
> **जग विरंचि उपजावा जबते।देखे सुने व्याह बहु तबते।।**
> **सकल भाँति सब साज समाजू।सम समधी देखा हम आजू**।बा. 319।1एवं 2।"

ये सभी चौपाइयाँ श्री राम जी के विवाह में दशरथ और जनक जी के परस्पर मिलन काल की है। देवता लोग दोनों राजाओं के मिलन को देखकर कहते हैं कि हम सब आज ही सम समधियों का मिलन देखा। याने दोनों समधी एक ही समान हैं। इस देश में विवाहे जाने वाले वर कन्याओं के पिता को समधी या सम्बन्धी कहा जाता है। यह शब्द इस अर्थ में योगरुढ़ है। समान धी (बुद्धि) वाले को भी समधी कहते हैं। यहाँ पर '**सम समधी**' के अर्थ में यह प्रश्न होता है कि दोनों समधियों में किन किन बातों की समानता है जिससे सम समधी कहा गया है।

यद्यपि दोनों राजाओं में कुछ अंशों में विषमता भी पायी जाती है। जैसे - **1**। दशरथ जी चक्रवर्ती राजा हैं और जनक जी मण्डलवर्ती तो राज्य लेकर दोनों में समानता नहीं है। **2**। "**सुरपति वसहिं बाहुवल जाके।नरपति रहहिं सकल रुख ताके**।अयो.24।1।" इससे दोनों में बल की समानता नहीं है। **3**।"**सुरपति जेहि आगे करि लेहीं।अर्घ सिंहासन आसन देहीं**।अयो. 97।2।" इससे मान-प्रतिष्ठा में भी दोनों में समानता नहीं है। **4**।इक्ष्वाकुकुल भागवत धर्मावलम्वी हैं। इस कुल के इष्टदेव भगवान रंगनाथ जी हैं जो दशरथ पर्यन्त इस कुल में रहे। "**निज कुल इष्टदेव**

भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह पकवाना।बा.200।1।" जनक कुल शैव हैं इसी से इनके पूर्वज देवरात को शिव जी ने धनुष दिया था जिसको श्री राम जी ने तोड़ा। इस तरह उपासना उपास्य देव लेकर दोनों में भेद पाया जाता है। **5**।दशरथ जी साठ हजार वर्ष व्यतीत होने पर यज्ञादि द्वारा पुत्र प्राप्त किये थे।जनक जी इतने दीर्घायु नहीं हैं। **6**।**"कश्यप अदिति महातप कीन्हा।तिन्हकहँ मैं पूरब वर दीन्हा।। ते दशरथ कौशल्या रूपा। कौशलपुरी प्रगट नर भूपा**।बा. 186।2।"**"भे कोउ अहहिं न होनेउहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा**।अयो. 172।3।"याने त्रिकाल में भी दशरथ जी के तुल्य कोई नहीं हो सकता है तो फिर जनक जी से समानता कैसी !इत्यादि विषयों में विषमता पायी जाती है।

किन्तु अधिकांश विषयों में समानता पायी जाती है। यथा -**1**।श्री राम जी के परत्व लेकर दोनों में समानता है। **"गिरा अर्थ जलवीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।बन्दौ सीताराम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न**।बा. 18।" यहाँ जल वीची के उदाहरण से दोनों एक हैं केवल कथन मात्र से भिन्न हैं। ऐसे एक वस्तु से आधा श्री राम को दशरथ पाये और आधा सीता जी को जनक पाये, अतः दोनों समान समधी हुए। **2**।ब्रह्मा जी श्री राम जी से कहे हैं **'भगवन्नारायण साक्षात्'** और ऐसे नारायण(श्री राम जी) के पिता दशरथ जी हुए। और लक्ष्मी ही **'रामरूपे भवेत्सीता रुक्मिणी कृष्ण जन्मनि'** अर्थात् लक्ष्मी (सीता) के पिता जनक जी हुए। अतः ईश्वरी और ईश्वरी के पिता होने के कारण दोनों सम समधी हुए। **3**।इन दोनों के समान लक्ष्मी और नारायण का पिता कोई नहीं हुआ। अतः कवि कहता है कि **"उपमा खोज खोज कवि लाजे"** परन्तु आज संयोग वश **"इनसम ये उपमा उर आनी"** जैसे "गगनं गगनाकारम् पर्वतं पर्वतोपमम्" अर्थात् आकाश की उपमा आकाश से ही दी जा सकती है और सुमेरु की उपमा सुमेरु से ही। इसी प्रकार दशरथ की उपमा दशरथ ही हैं। इसी दूरदर्शिता को लेकर देवगण कहते हैं कि मनुष्य देवताओं का विवाह तो बहुत देखा लेकिन लक्ष्मी नारायण का विवाह देखने का आज ही सुअवसर प्राप्त हुआ है। दोनों अनुपम हैं किन्तु इस समय दशरथ के समान जनक और जनक के समान दशरथ हैं। यही समानता से सम समधी हैं। **4**।जीवात्मा की सुकृति दुष्कृति अदृश्य होकर आत्मा से सम्पर्क रखती है किन्तु दशरथ और जनक की सुकृति पृथक् मूर्तिमान् होकर प्रत्यक्ष **"दशरथ सुकृत राम धरि देही।जनक सुकृति मूरति वैदेही**।बा. 309।1 ।" राम जानकी रूप में विद्यमान हैं। अपनी अपनी सुकृति को दोनों देखने वाले हैं, अतः समान हैं। **5**।दोनों के अयोनिज पुत्र पुत्री हैं रामजी **'खीर से हुए'** तो सीता जी **'धरती'**से हुईं। **"निज इच्छा निर्मित तनु**।बा.बा192।" **"आप प्रगट भए विधि न बनाये"** ऐसे अयोनिजों को अपना पुत्र पुत्री मानना इस विचार विषय में समानता होने से दोनों सम समधी हैं। **6**।शास्त्रों में **'अर्द्धेन नारी तस्य स्यात् अर्द्धेन पुरुषोऽभवत्'** याने ब्रह्म आधी देह से पुरुष और आधी देह से स्त्री रूप में जनक जी को प्राप्त हुए। इससे भी दोनों में समानता है। **7**। **"मिले जनक दशरथ अति प्रीति**।बा.319।1।" अर्थात् दशरथ और जनक दोनों के हृदय में प्रेम का समुद्र उमड़ रहा था। आज जिस गद्‌गद हृदय से मिले हैं पूर्व में न तो दशरथ को प्राप्त हुआ और न जनक को। **"जासु विरचि बड़ भयेउ विधाता। महिमा अवधि राम पितु माता**।बा. 15।4।" जो दशरथ जी पुत्र के लिए लालायित थे किन्तु आज पुत्र के विवाह महोत्सव में खड़े हैं और उनसे जनक जी का मिलन हो रहा है। दोनों के हृदय में परम प्रेम है, अतः समानता है। **8**।सभी लक्षण सम्पन्न बाराती के योग्य साराती और साराती के योग्य बाराती - अतः दोनों पक्ष के नायकों में समानता है। यह बारात महादेव जी के बारात के सदृश नहीं है कि **"विपुल नयन कोई नयन बिहीना**। बा.

92।4।" "**जमकर धार किधौं बरियाता**। बा. 94।4।" "**जो जियत रहहीं बरात देखत पुण्य बड़ तेहि कर सही**। बा. 94।छंद।" "**बालक सब ले जीव पराने**।बा. 94।3।"ऐसी भयावनी बारात यह नहीं है किन्तु अत्यन्त उत्तमता के कारण प्रियदर्शन होने से देवगन कहते हैं कि हम सब एक समान अति प्रेम से देखा। अर्थात् समान धी (बुद्धि) से हम सब बारात की सुन्दरता का अवलोकन किया है, इससे समधी शब्द आया है।

10।**'देखा हम आजु'** - कहने का भाव यह है कि इसके पूर्व बहुत से देवतओं के विवाह में बड़े से बड़े समधियों को देखने का अवसर मिला। जैसे महादेव जी के विवाह में वर के पिता चतुरानन ब्रह्मा और कन्या के पिता हिमाचल पर्वत। इन दोनों समधियों में आकाश पाताल का अन्तर था। ऋषि श्रृंग के पिता विभाण्डक और कन्या के पिता रोमपाद, इन दोनों को तो मिलने का संयोग ही नहीं हुआ। विषमता तो थी ही। इसी प्रकार सर्वत्र बारातियों में वे सब विषम समधियों को ही अभी तक देखे हैं और आज **"जग विरंचि उपजावा जब ते"** बहुत दिनों के बाद सम समधी देखने को मिले हैं।

"कर्म प्रधान विश्व कर राखा।।" याने विश्वमात्र अपना अपना कर्मफल भोगने के लिए इस संसार में जन्म ग्रहण करता है किन्तु राम जानकी कर्माधीन नहीं, स्वतन्त्र हैं बल्कि कर्म के भी नेता दोनों के प्रापक दोनों सम हैं। दशरथ और जनक इस मिलन के पूर्व कभी भी इस अनुराग से किसी से नहीं मिले और न कोई अन्य समधी से इसके पूर्व मिले हैं। दोनों के अपूर्व मिलन का आज सुअवसर है। दशरथ जी का जैसा प्रेम पुत्र में है वैसा ही पुत्रवधू में भी है और जनक जी का जैसा प्रेम जानकी में है वैसा जामाता (श्री राम जी) में है। इसी से दोनों समान हैं। 11।राम जानकी के अर्न्तदेव हैं और जानकी राम की अर्न्तदेवी। दशरथ के यहाँ जानकी अन्तरिक्ष होकर रहती हैं और जनक के यहाँ रामजी अन्तरिक्ष होकर रहते हैं। अर्थात् दोनों के घर राम-जानकी हैं अतः समानता है। इस प्रकार दोनों में कुछ अंशों में विषमता होते हुए भी श्रीराम जानकी के परत्व (यहाँ उत्कृष्ट) विषय को लेकर अधिकांश मात्रा में समानता होने के कारण समसमधी पद आया है। यथा - राम लखन की जोड़ी, "**द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया**।श्वेताश्वतर उपनिषद 4।6।"

मानस प्रसंग 12।

"**सूयोदन सुरभी सरपी सुन्दर स्वादु पुनीत।छनमहँ सबके परसि गे चतुर सुआर विनीत**।बा. 328।" यह दोहा जनकपुर में बारात के भोजन के समय का है। इससे पहले "**आसन उचित सबहिं नृप दीन्हें।बोलि सूपकारी सब लीन्हें।। सादर लगे परन पनवारे। कनक कील मणि परन सवाँरे**।बा.327।4।" राजा जनक जी ने सबों को उचित आसन देकर सभी पाक बनाने वालों को बुलाया और आदर के साथ पत्तलें दिलवाने लगे। उन पत्तलों में सोने की कीलें लगी थीं और कीलों के ऊपर के भाग मणियों से जड़ा हुआ था। पत्तलों में ही भोजन की विधि शास्त्रों में वर्णित है। पत्तलों में भोजनार्थ पवित्र सुन्दर स्वादिष्ट भात दाल और गाय का घी चतुर रसोइये सबों को क्षणभर में परोस गये। परोसक परोसने की विधि जानते थे इसीलिए चतुर शब्द आया है।

परोसन विधि ः- शाकादीन पुरतः स्थाप्य भक्ष्य भोज्यन्तु वामतः। अन्नं मध्ये प्रतिष्ठाप्य दक्षिणे घृत पायसम्।। याने पत्तल के मध्य में भात और दाल, आगे शाकादि वारा बजका पापर तिलौरी दनौरी आदि वाम भाग में तथा दूध दही राबड़ी आदि दायें भाग में परोसे। भोजन की सामग्री भगवान् का भोग लगाया हुआ था।

इसीलिये पवित्र शब्द आया है। भगवान् का भोग लगा प्रसाद सेवन करना चाहिए। "**यत् करोषि यत् अश्नासि यत् जुहोषि ददासि यत्।यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरूष्व मदर्पणम्।**गी. 9।27।" भगवान् कहे हैं मेरे निमित्त कर्म करो, मुझे अर्पण कर भोजन करो। "**यज्ञशिष्टाशिनः सन्तोमुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः।**गी.3।13।" ऐसा करने से सभी पापों से छुटकारा मिल जाता है। '**सुरभि सरपी**' का भाव यह है कि गौ का घी या दूध का किंचित का अंश जबतक शरीर में रहता है तब तक पाप स्पर्श नहीं करता। '**पयो दधि च मासेन षड्मासेन घृतं तथा**' दूध दही का अंश एक मास में और घी का अंश छः मास में मिटता है। इसीलिए पवित्रकारक गौ का घी परोसा गया था। 'परसिगे' यह क्रिया समाप्ति सूचक पद है अर्थात् उपरोक्त वस्तुओं के परोसे जाने पर पुनः "**भाँति अनेक परे पकवाना। सुधा सरिस नहीं जाहिं बखाना।। परसन लगे सुआर सुजाना। व्यंजन विविध भाँति को जाना।**बा.328।2।"

इसके पश्चात् चतुर विज्ञ अयोध्यावासी "पंच कवल करि जेवन लागे।बा.328।1।" अर्थात् भोजन के पूर्व पंचकवर (आपोसन) कर भोजन करना चाहिए। अन्यथा -

"**पात्रमध्ये यथा पात्रं हस्तमध्ये यथा घृतम्। आपोषणं विनाभुंक्ते त्रयः गो मांस भक्षणं।।**" एक पात्र में दूसरा पात्र रखकर, हाथ के मध्य में घी रखकर तथा पंचकवर किये बिना जो भोजन किया जाता है वह सब गोमांस के तुल्य हो जाता है। पंचकवर की विधि यों है।

"**ध्यात्वा हृत्पंकजं विष्णुं सुधांशु सदृश द्युतिम्। पादोकदं हरेः पुण्यं तुलसीदल मिश्रितम्।।**
अमृतोपस्तरणमसि इति मंत्रेण प्राशयेत्। उद्दिश्यैव हरिं प्राणाज्जुहुयात्सघृतं हविः।।
तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठैः प्राणयेति यजेद्धविः।मध्यमानामिकङ्गुष्ठैः अपानायेत्यनन्तरम्।।
कनिष्ठामानामिकङ्गुष्ठैः व्यानामेत्याहुतितनः। कनिष्ठतर्जैन्यङ्गुष्ठैः उदानायेति वै यजेत्।।
समानायेति जुहयात् सर्वैरङ्गुलिभिर्द्विजः। ध्यायेन्नारायणं देवं भोजनन्तु यथा क्रमम्।।
वक्त्रादयातयन् ग्रासं चिन्तयन्मधुसूदनम्।।

पहले हृदय कमल में चन्द्र के समान प्रकाशमान् विष्णु भगवान् का ध्यान करके तीर्थ या तुलसीदल लेकर "**ॐ अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा**"कह कर पी लेवे। पश्चात् मैं भगवान् को भोग लगाता हूँ ऐसा मन में समझते हुए थोड़ा हवि या घी मिश्रित प्रसाद अंगूठा, तर्जनी और मध्यमा इन तीन अंगुलियों से उठाकर मुँह में लेकर निगल जावे, दाँतों से चबाना नहीं चाहिए। इसको निगलने के समय '**ॐ प्राणाय स्वाहा**' यह मंत्र बोले। पुनः अनामिका मध्यमा और अंगूठा से पूर्ववत् थोड़ा सा हवि '**ॐ अपानाय स्वाहा**' यह कहकर निगल जाये। इस प्रकार कनिष्ठा अनामिका और अंगूठा से '**ॐ व्यानाय स्वाहा**' कहकर निगल जाये। अंगुठा तर्जनी और कनिष्ठा से '**ॐ उदानाय स्वाहा**' कहकर निगले और पाँचों अंगुलियों से '**ॐ समानाय स्वाहा**' कहकर निगल जावे। पश्चात् थोड़ा जल लेकर पुनःआचमन कर तब भोजन करे। इसी को पंचकौर करना कहते हैं। भोजन के साथ घी तथा हविष्य का रहना अनिवार्य नहीं है बल्कि भोजन के लिए जो कुछ भी रुखा-सूखा प्रसाद आगे आया हो उसी से पंचकौर करके भोजन करना चाहिए।

"**अश्नीयात्तन्मना भूत्वा पूर्वंतु मधुरं रसम्। लवणाम्लौ तथा मध्ये कटुतिक्तौततः परम्।।**"

यदि भोजन में सभी प्रकार की सामग्रियाँ मौजूद हो तो पहले मधुर पदार्थ भोजन करना चाहिए, पश्चात् खट्टा और नमकीन, इसके पश्चात् कटु और तिक्त और अन्त में मधुर रसयुक्त पदार्थ तथा पेय वस्तु को खाये पीये।

"उपलिप्ते शुभे देशे पादौ प्रक्षाल्य वाग्यतः। भूमौपात्रं प्रतिष्ठाप्य यो भुंक्तेऽवाग्यतः शुचि। त्रिरात्रफलमश्नुते।।" याने लीपी हुई भूमि पर बैठ भूमि पर ही पत्तल रखकर जो मौन हो भोजन करता है वह एक दो ग्रास में त्रिरात्र (तीन रात्रि से सम्बन्ध रखनेवाला) व्रत का फल प्राप्त करता है। इसी से **"आसन उचित सबहिं नृप दीन्हें"** सबों को भोजन काल में भूमिपर ही उचित आसन दिया गया है। भोजन के पूर्व अतिपवित्र होना अनिवार्य है। क्योंकि -

"अस्नात्वासमलं भुङ्क्ते त्वजापीपूयशोणितम्। अहुत्वा च क्रिमिंभुक्ते ह्यदत्त्वाऽमेध्यमेव च।। बिना स्नान किये भोजन मलमूत्र के बराबर है, गायत्री या मूलमन्त्र जपे बिना जो खाता है वह लहू-पीव के तुल्य है, हवन किये बिना जो खाता है वह कीड़ा खाने के तुल्य है और बिना अतिथि को कुछ दिये जो खाता है वह अपवित्र होता है। **"पादुकस्थोनभुंजीत पर्यंके संस्थितोऽपिवा।शुनाचाण्डाल दृष्टीव्यत् भोजनं परिवर्जयेत्।"** खड़ाऊँ - खटिया, कुर्सी - टेबुल, चौकी के ऊपर तथा कुत्ता चाण्डादि का देखा हुआ खाना मना है। **'न धार्य सन्धितंवस्त्रं भोजने यज्ञकर्म णि'**भोजन तथा यज्ञके समय सीया हुआ कपड़ा नहीं धारण करना चाहिए। **'नैकवस्त्रो द्विजः कुर्यात् भोजनञ्च सुरार्च नम्'** द्विजमात्र (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य)को एक वस्त्र धारण करके भोजन तथा देवपूजन नहीं करना चाहिए। जातिदुष्ट (श्वेत बैगन, प्याज लहसुनादि), क्रियादुष्ट (अपवित्रतापूर्वक बिना नहाये बनाया भोजन), संसर्गदुष्ट (चाण्डालादिकों का देखा हुआ), भावदुष्ट (बिना प्रेम तथा अहंकारपूर्वक बनाया हुआ) अन्न को नहीं खाना चाहिए। **"नीली रक्तेनवस्त्रेण यदन्नमुपनीयते। अभोज्यं तद्विजानीयात् भुक्त्वा चान्द्रायणंचरेत्।।"** नील वस्त्र चौखानी आदि पहनकर बनाया हुआ या लाया हुआ नहीं खाना चाहिये। यदि खाये तो चान्द्रायण व्रत करके शुद्ध होना पड़ेगा। **"शुक्लाम्बरधरोनित्यं सुगन्धिप्रियदर्शनः"** अर्थात् स्वच्छ पवित्र एवं सुगन्धित वस्त्र धारण करना चाहिए। उपरोक्त सभी आचरणीय व्यवहारों में कुशल जनक जी के सभी सुआर (पाचक) थे। इसी से दोहा में इन सबों के विशेषण में चतुर सुआर तथा विनीत पद आया है।

मानस प्रसंग 13।

"चरण कमल रजकहँ सब कहई।मानुष करनि मूरि कछु अहई।।
छुअत शिला भई नारि सुहाई। पाहन ते न काठ कठिनाई।।
तरनिउ मुनि घरनि होई जाई । बाट परइ मोरि नाव उड़ाई।।
यहि प्रतिपालऊँ सब परिवारू। नहीं जानई कछु और कवारू।।
जो प्रभु अवसि पार गा चहहू।मोहि पद पदुम पखारन कहहु।अयो. 99।1 से 4।"

"पद कमल धोई चढ़ाउँ नाव न नाथ उतराई चहौं। मोहि राम राउरि आन दशरथ सपथ सब साँची कहौं।
वरु तीर मारहु लखनु पै जब तक न पाँव पखारिहौं। तबलगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहौं। अयो.99 छंद।"
"सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे। बिहँसे करूणा ऐन चितये जानकी लखन तन। अयो.100।"

कृपासिन्धु बोले मुसकाई।सोई करहु जेहि नाव न जाई।अयो.100।1।"

श्री रामचन्द्र जी जंगल जाते समय जब श्रृंगबेर पहुँचे हैं और गंगा पार जाने के लिए निषादराज से नाव माँगते हैं उसी समय के उसके प्रेमोद्गार की उपरोक्त चौपाई दोहे इत्यादि हैं। भगवान् श्री रामचन्द्र जी से निषादराज कहता है - भगवन् ! आपके चरणकमल की धूलि को लोग मनुष्य बनाने की मूरि (जड़ी-बूटी) कहते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण में पत्थर की शिला (शापित ऋषिपत्नी अहल्या)सुन्दरी स्त्री बन गयी तो काठ की मेरी नाव पत्थर से कठिन

तो नहीं है। यदि कहीं यह भी मुनिपत्नी बन गयी तो सार्वजनिक आवागमन अवरुद्ध हो जायेगा और मेरी जीविका मारी जायेगी। मैं अन्य कोई दूसरा उद्यम नहीं जानता, अतः मेरे सभी परिवार भूखे मरेंगे।इसलिए हे प्रभो! यदि आप अवश्य पार जाना चाहते हैं तो पहले मुझे अपने चरणकमल धोने की आज्ञा दें।

प्रभु इसलिये कहता है कि राजा के पुत्र हैं, सामर्थ्यशाली हैं, यदि चाहें तो इस गंगा को हेलकर या सुखाकर भी पार कर सकते हैं किन्तु मर्यादा पुरुषोत्तम के नाते इसको सुखाकर या लांघकर भी नहीं जा सकते। गंगा इनके पूर्वजों के उद्धारक हैं, अतः नाव से ही पार जा सकते हैं। सत्यप्रतिष्ठ हैं इसलिए लौट भी नहीं सकते। ऐसा गरजवन्द समझकर यह भी कहता है कि "**जो प्रभु अवसि पार गा चहहू।मोहि पद पदुम पखारन कहहु।**" इत्यादि।खेवाई भी नहीं लेना चाहता किन्तु पैर धोना अवश्य चाहता है और अपने कथन को सत्य साबित करने के लिये शपथ भी कर रहा है। निषादराज यह भी जान रहा है कि इस समय गंगा पार करने में जो मैं खटपट लगा रहा हूँ वह लखनलाल को असह्य भी हो रहा होगा क्योंकि भगवान् के मन के प्रतिकूल कार्य इन्हें असह्य होता ही है। यही तैजस इनका स्वाभाव है। मैं इनकी प्रजा हूँ , बिना कहे पार कर देना उचित था किन्तु कहने पर भी जो अगर मगर कर रहा हूँ वह अवश्य इन्हें क्रोधित कर रहा होगा। अतः यह भी कहता है - "**बरु तीर मारहु लखनु पै जब तक न पाँव पखारिहौं**"। हे नाथ !इस अवसर पर मेरी अड़चनों से क्रोधित हो लखन जी यदि मुझे बाण भी मारेंगे तो भी चरन धोये बिना मैं पार नहीं करूँगा।

अपना स्वामी होने से नाथ, और इतना हठ करने पर भी क्षमा कर रहे हैं, अतः कृपाल शब्द निषाद उच्चारण कर रहा है। यही कृपाल शब्द सुनकर भगवान् हँसते हैं '**बिहँसे करूणा ऐन।**' निष्प्रयोजन तथा असंगत बोलने को अटपट कहते हैं। यही अटपट यहाँ निषाद कर रहा है क्योंकि यदि पाँव धोना ही था तो चुपचाप धो लेता। काठ की नाव से भ्रम था तो थाली में ही धो लेता सो नहीं कर झंझट कर रहा है। अहल्या का उदाहरण देता है। यह भी सुना ही होगा कि "**मुनि शाप जो दीन्हा**।बा. 210।छं 3।" इस प्रकार उसकी नाव शापित तो नहीं थी। पगधूरि को मानुष करनि मूरि कहता है और नाव के काठ को पत्थर से कोमल बताता है किन्तु काठ से भी कोमल मिट्टी तृणादि श्री राम जी के चरणों या चरणों की धूलि का स्पर्श पाकर मुनि पत्नी नहीं बन गये तो काठ की तो बात ही क्या। रास्ता बन्द होने की बात उपस्थित करता है याने दीन-हीन एक ही नाव का नाविक हूँ ऐसा सूचित करता है।

किन्तु यही निषाद भरत जी को गंगा पार के समय '**रात ही रात घाट की तरनी**'और "**चार दण्डमहँ भा सब पारा**।अयो. 201।5।" यह तो मल्लाहों का मुखिया था। इसके पास बहुत सी नावें थीं। इसी से सबों को एक ही बार में पार कर दिया। तो यहाँ रास्ता बन्द की बातें करना, नाव खेना छोड़ दूसरा कोई उद्यम नहीं जाननायह बहाना करना, उतराई नहीं लेने की बात कह उनको प्रसन्न करने की चेष्टा करना अटपटा का द्योत्तक था। शपथ स्वयं या स्वकीय परिवारों को लेकर नहीं करता किन्तु दशरथ को ही रखता इत्यादि बातें उलटी पुलटी हैं। इसलिये अटपट की बाते हैं। उपरोक्त निषादराज का कथन यद्यपि अटपट है फिर भी प्रेम लिपटा हुआ है। किसी वस्तु को सर्वत्र से बाँधने को लपेटना कहते हैं। निषाद के अटपट वचनों द्वारा प्रेम ही वेष्ठित है अथवा

प्रेम द्वारा अटपट वचन ही वेष्टित है। **'चितै जानकी लखन तन'** का भाव है कि श्री राम जी जानकी तथा लछुमन को यह सूचित करते हैं कि तुम लोग यह देखो।

"नरसहस्र महँ सुनु उरगारी। कोई एक होहिं धरम ब्रतधारी।।
धर्मशील कोटिन्ह महँ कोई। विषय विमुख विराग रत होई।।
कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक् ज्ञान सुकृति कोई लहई।।
ज्ञानवन्त कोटिन्ह महँ कोई। जीवन्मुक्त सकृत जग सोऊ।।
तिन सहस्र महँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्मलीन मुनि ज्ञानी।।
धर्मशील विरक्त अरु ज्ञानी। जीवन्मुक्त ब्रह्म पर प्राणी।।

सबसे सो दुर्लभ सुर राया। राम भक्ति रत गत मद माया।उ.53।1 से 4।"ज्ञानी, धर्मात्मा, विरक्त एवं भगवत्परायण में से किसी एक को भी भक्ति मिलना कठिन है। वही मुनि दुर्लभ भक्ति का यह अधिकारी बनना चाहता है। कहाँ तो इसकी अटपट बोली और कहाँ वह पराभक्ति। किन्तु आज इस पग को धोने के मिस से इसका अधिकारी बनना चाहता है। आज तक ब्रह्मा, जनक या तुम दोनों हे इसके अधिकारी थे। किन्तु यह सभी परिवारों के साथ उस अधिकार को स्वयं प्राप्त करना चाहता है, जो किसी को पुरुषकार किये बिना नहीं मिलता है। भगवान् निर्हेतुक कृपा प्राणियों के ऊपर किया करते हैं। अतः स्वयं जानकी और लक्ष्मण को केवट की शरणागति में पुरुषकारी बनने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। या नियमानुकूल केवट को शरणागत बनाने में पुरुषकारी इन दोनों से अनुमति चाह रहे हैं, कि तुम लोग शेष और लक्ष्मी दिव्य होने के कारण अनादिकालिक हमारे पग के अधिकारी हो। किन्तु यह प्राकृत पुरुष होते हुए भी तुम सबों का यह हिस्सेदार बन दिव्य बनना चाहता है। अतः अपनी अनुमति प्रदान कर इसको अंगीकार करना चाहिए।

प्रथम जानकी पद और पीछे लखन पद का प्रयोग किया गया है। इसका भाव यह है कि उक्त प्रसंग में निषाद लखन जी के सम्बन्ध में यह कहा कि - **"वरु तीर मारीह लखन पै...**।अयो. 100।" इससे परम भागवत लखन जी के प्रतिवाचिक अपराध कर चुका है। क्योंकि बिना तमोगुण के हिंसादि कार्य नहीं हो सकता तो लखन लाल में तमोगुण और घातक दोनों दोष लगाया। ऐसी परिस्थिति में भगवान् सोचे कि हमारी कृपा तो इस पर है ही, किन्तु भागवत अपराधी को कैसे स्वीकार करूँ, इसलिये मातृगुण गौरवता जानकी जो को पहले कहकर तब आचार्यगुण गौरवता प्रधान लखन को पीछे कहा है। भाव यह है कि जानकी जी को अपराध क्षमा करवाने के लिए इंगित कर रहे हैं और लखन जी को अपराध क्षमा करने के लिए। तथा दोनों के मुखारविन्द को देखकर राम जी विहँसे इससे यह भी सिद्ध हुआ कि दोनों पुरुषकारी निषाद को अपराध क्षमा कर दिये जिससे अत्यंत प्रसन्नता होने के कारण श्री राम जी हँस रहे हैं।

अथवा प्रेम लटपटे अटपटे बैन सुन, जानकी लखन तन और करुणा अयन केवट के चितये विहँसे। याने जानकी यह सूचित करती हैं कि लखन लाल यह भगवान् के स्वभाव को तो देखी, कि एक तो निर्हेतुक कृपा द्वारा ही निषाद को दर्शन दिये। किन्तु वह अटपटे ही कर रहा है फिर उसका कृपाल आदि शब्द सुनकर अपनाना चाहते हैं। यह भी उसका भाव हो सकता है।

निषाद के हृदय में प्रेम था, वह मानसिक सेवा हुई। कृपालु कहकर कृपागुण वर्णन द्वारा वाचिक सेवा किया, और पाँव धोकर कायिक सेवा करना चाहता है। निषाद को वचनों को सुनकर भगवान् हँसे, यह जानकी जी लखन को सूचित करती हैं ी देखाो, भगवान् के जिस मुख-मुस्कान को देखने के लिए ब्रह्मा रुद्रादि लालायित रहते हैं और वह प्राप्त नहीं होता वही आज इसको प्राप्त हो रहा है, अतः यह बड़भागी है। जानकी लखन से यह सूचित करती हैं कि शेषी परमात्मा शेषवस्तु (जीव)को अंगीकार कर रहे हैं।

"करुणा अयन"इसलिए कहा गया है कि योगी, मुनि तथा मनस्वियों को सतत भगवत्प्राप्ति का प्रयास करने पर भी स्वप्न में भी भगवान् नहीं मिलते। किन्तु घर बैठे सभी परिवारों के साथ इस छुद्र हिंसक जाति को दर्शन दे, कृतार्थ किया है। करुण शब्द का प्रयोग करने में भी हेतु है कि निषाद श्री राम जी से यह कहा है कि"**यह घाट ते थोरिक दूर अहै कटिलौं जलथाह बताइहौं जू।**कवितावली अयोध्या 6।"यदि आपको पाँव धुलवाना स्वीकार नहीं हो, तो यहाँ से हटकर थोड़ी ही दूर पर कटिमात्र जल है जिसे बताता हूँ, आप पार हो जायें। मालूम पड़ता है कि भगवान् को यहाँ से हटाना चाहता है, किन्तु इसके ऊपर भगवान् का इतना प्रेम है कि इससे अपमानित होते हुए भी नहीं छोड़ रहे हैं। बल्कि हँसते हुए यह कहते हैं कि **"सोई करु जेही तव नाव न जाई।**अयो.100।1।"तुम वही काम करो जिससे तुम्हारी नाव न उड़ जाये।

पहले निषाद पैर धोने के लिए आज्ञा करवाना चाहता था। किन्तु सीधे आज्ञा देना मर्यादा पुरुषोत्तम को उचित नहीं था, अतः निषाद के ऊपर ही उस कार्य का दायित्व रख छोड़े।इसीलिए कृपासिन्धु पद आया है। जानकी और लखन की ओर श्री राम जी को देखने का यह भी भाव है कि ब्रह्मा तो अपनी पवित्रता तथा गंगा की उत्पत्ति के लिए पाँव धोये थे। जनक कन्या दान के प्रसंग में पाँव धोये थे। किन्तु इसे तो इन सबों से कोई प्रयोजन नहीं है, अतः पैर धोने में इसके हृदय में कुछ दूसरा ही भाव है। या ब्रह्मा जो पाँव धोये उससे यह गंगा निकली, किन्तु इस गंगा से इसे तृप्ति नहीं, जिससे इसे यह अवहेलना कर रहा है, इसमें इसे विश्वास नहीं, तवतो पुनः पाँव धोना चाहता है। यदि ऐसा हुआ करे, तो गंगा का माहात्म्य ही नष्ट हो जायेगा, अतः एक ओर तो यह संकोच और दूसरी ओर इसके प्रति प्रेम का संकोच, ऐसी परिस्थिति में में क्या करुँ यही अनुमति चाहते हैं। **"अन्यक्षेत्रे कृतं पापं पुण्य क्षेत्रे विनश्यति। पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति।।"**

यह निषाद गंगा किनारे रहकर कच्छ मच्छ का हनन रूप पाप सदा किया करता है, इससे तो इसका पाप वज्रलेप हो गया है। पाँव धोने से तो छूटेगा नहीं, इसको सीधे पाँव पर गिर, शरणागति करना चाहिए था, यह भूल कर रहा है, अतः तुमलोग इसे सम्भालो जिससे यह शरणागति करे।

श्री राम जी का निषाद के यहाँ जाना चेतनों पर निर्हेतुक कृपा करना है। उसके अटपट वचनों को सुनना भक्तों के हृदय के भावों को समझ वाह्य वृत्ति को मन में नहीं लाना झलकता है। जैसे घण्टाकर्णादि के प्रति। इसीसे भगवान् का नाम अज्ञाता है। पगधोने का आग्रह चेतनों के उपजीव्य भगवतकैंकर्य की प्रार्थाना है। पग धुलवाकर पार करवाना सबविधि चेतनों को याने शेष वस्तु को शेषी अपनाया है तथा उपजीव्य वस्तु प्रदान किया है यह ज्ञात होता है - "**सो कृपालु केवट ही निहोरा। जो कीन्हें महि पग ते थोड़ा।**अयो.100।2।"

मानस प्रसंग 14।

भरत जी के साथ भगवान का अटूट प्रेम क्यों ? भरत जी अपना जीवानुसन्धान और भगवान का गुणानुसन्धान है। **"यद्यपि मैं अनभल अपराधी। भई मोहि कारण सकल उपाधि।**अयो. 182।2।" मैं अशुभ तथा बड़ा अपराधी हूँ

क्योंकि मेरे ही कारण श्री राम जी जंगल गये, पिता की मृत्यु हुई, माताओं को संताप हुआ, इन सब उपद्रवों का मूल मैं ही हूँ। ऐसे भरत जी अपने विषय में नीचानुसन्धान करते रहते हैं। और भगवान् के विषय में "**तदपि शरण सन्मुख मोहि देखी। क्षमि सब करिहहिं कृपा विशेखी।।** अर्थात् अपराधपात्र मुझे रहते हुए भी भगवान् मुझे सन्मुख शरणागत देखकर मेरे सभी अपराधों को क्षमा कर विशेष कृपा करेंगे। क्योंकि - "**शील सकुच सुठि सरल सुभाउ। कृपासनेह सरल रघुराउ।** अयो.182।3।" सुशीलता, सरलता, पवित्रता, प्रेम, कृपा तथा संकोचादि भगवान् के स्वाभाविक गुण हैं। ये सब कल्याणगुण परमात्मा में स्वतः उत्पन्न होकर सतत रहा करते हैं।

बड़े होते हुए भी छोटों से मिलना जुलना शील कहलाता है। इसी को कुरेश स्वामी यों कहें हैं - "**शीलः क एष तव हन्त ! दयैकसिन्धो क्षुद्रे पृथक् जनपदे जगदण्डमध्ये। क्षोदीयसोऽपि हि जनस्य कृते कृतित्वमत्रावतीर्य ननु लोचन गोचरोऽभूः।** अतिमानुष 10।" आप अखिल ब्रह्माण्डनायक होकर भी अवतार ले क्षुद्र कोल भील किरातादिकों के घर जाकर दर्शन दिया और उन सबों के क्षुद्र सेवा के वश होकर सदा कृतज्ञ बने रहे।

"**बारहिं बार गिद्ध शबरी के बरणत प्रीत सुहाई।** वि.पत्रिका 165।" "**ए सब सखा सुनिय मुनि मोरे। भये समर सागर कहँ बेरे।** उ. 7।4।"

संकोच - देय व्यक्तियों को बहुत बहुत देकर भी कम देने के ऐसा लज्जा अनुभव करना। """**जो सम्पति शिव रावणहि दीन्ह दिये दस माथ। सोई सम्पदा विभीषणहिं सकुचि दीन्ह रघुनाथ।** सु.49।"

सुठि - पवित्र याने शुद्ध षड्विकाररहित, सरल स्वभाव, शीघ्र द्रवित होने वाले को कहते हैं।

कृपा - किसी को कष्ट में देखकर सहन नहीं होना तथा उसके कष्ट को दूर करना।

"**अरिहुंक अनभल कीन्ह न रामा। मैं शिशुसेवक यद्यपि बामा।** अयो. 182।3।" भगवान् अपने शत्रुओं को भी मारकर कल्याण ही किया है। भगवान् के इन सभी गुणों को अनुसन्धान करते हुए भरत जी सोचते हैं कि मैं यद्यपि अपराधी हूँ किन्तु शिशु सेवक अज्ञानी समझकर भगवान् अपना ही लेंगे। "**क्रूर कुटिल खल अति अकलंकी। नीच निशील निरीश निशंकी।। तेउ सुनि शरण सामुहे आये। सकृत प्रणाम किये अपनाये।** अयो.298।1-2।" क्रूर स्वभाव वाला कुटिल दुष्ट कलंकी ईश्वर को नहीं मानने वाला तथा निशंक होकर पाप करने वाला भी यदि सम्मुख आकर एक बार भी मैं आपका हूँ ऐसा कहता है उसे परमात्मा अपना लेते हैं। तथा -

> "**देखि दोष कबहूं न उर आने। सुनि गुण साधु समाज बखाने।** अयो.298।2।
> **जन अवगुण प्रभु मान न काऊ। दीनबन्धु अति मृदुल सुभाऊ।** उ.0।3।
> **रहत न प्रभु चित चूक किये की। करत सुरत सौ बार हिये की।** बा.28।3।"

जिस शरणागत को परमात्मा अपना लेते हैं उसके दोषों को देखते हुए भी हृदय में नहीं लाते बल्कि उसके सुने गुणों को साधु समाज में प्रचार किया करते हैं।

भरत का परस्पर प्रेम- "**राम प्राण के प्राण तुम्हारे। तुम रघुपतिहिं प्राण ते प्यारे।** अयो. 168।1।"

"**भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम राम जपु जेही।** अयो. 217।4।" भरत जी के प्राण के भी प्राण राम जी हैं और राम जी के प्राण से भी प्यारे भरत जी हैं, जिनका नाम राम जी हमेशा स्मरण किया करते हैं। राम जी में भरत का दृढ़ाध्यवसाय यों है - "**यद्यपि जनम कुमातु ते मैं सठ सदा सदोष। आपन जानि न छाड़िहैं मोहि रघुवीर भरोस।** अयो.183।" भरत कहते हैं - एक तो मेरा जनम कैकेयी सदृश कुमाता से है, फिर भी जन्म से मैं दोषी हूँ

तब भी मुझे विश्वास है कि भगवान् मुझे अपना समझ कर नहीं छोड़ेंगे, ऐसा गुण परमात्मा में है। "**अघ अवगुण तजि आदरहीं समुझि आपनी ओर**।अयो. 256।1।" भगवान् हमारे दुर्गुणों को भूलकर अपनी ओर यानी स्वामीत्व गुण का स्मरण करते हुए मुझे आदर करेंगे याने दोषुक्त होने पर भी शरण में ही रखेंगे। इन्हीं सभी विचारों को ध्यान में रखते हुए भरत के विषय में कहा है - "**भरत महा महिमा जल रासी** -अयो. 256।1।" "**राम प्रेम मूरति तनु आही**।अयो.183।2।" "**भरत हृदय सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरणि प्रकासू**।अयो.294।4।" भरत जी महिमा के समुद्र तथा श्री राम जी के प्रेम की मूर्ति हैं।उनके हृदय में श्री राम रूपी सूर्य सतत वास करते हैं। अतः मोहादि अन्धकार का वहाँ लेश भी नहीं रहता। इसी लिये श्री राम जी कहते हैं कि "**भयउ न भुवन भरत सम भाई** ।अयो. 258।2।" भरत के समान संसार में भाई नहीं हुए हैं।

उपरोक्त विषयों के अध्ययन द्वारा भरत जी की अपूर्व उत्कृष्टता झलकती है फिर इनके प्रति लखन जी क्रोधित हो ऐसा क्यों बोले ?"**कहँ लगि सहौं रहौं मन मारे।नाथ साथ धनु हाथ हमारे**।अयो. 228।4।" "**आजू रामसेवक जश लेऊँ। भरतहि समर सिखावन देऊँ**।। "**आय बने भल सकल समाजू।प्रकट करौं रिस पाछिल आजू।। सानुज निदरि निपातौं खेता**।।अयो. 229।2-4।" आपके साथ तथा हाथ में धनुष रहते हुए भी मन को मार भरत के अत्याचार को कहाँ तक सहन करूँ ? अर्थात् नहीं सहन करूँगा और भरत को समर में ही दण्ड दूँगा। यह अच्छा समय आया है कि जब कि भरत के साथ शत्रुघ्नादि भी हैं। आज पहला बैर भी लूँगा। दोनों भाईयों को मृत्यु शय्या पर सुला दूँगा। कहँ लगि कब तक सहौं- यहाँ पर कब तक शब्द से बहुत अत्याचार होने की ध्वनि निकलती है। भरत ऐसे बड़े भाई को मारकर कौन यश प्राप्त करते कि सेवक यश लेऊँ कहा? पहला रिस कौन था कि जिसे प्रकट करते - इत्यादि भरत के उदात्त चरित में संशय उत्पन्न करते हैं।

उत्तर - लखन जी संकर्षण के अवतार हैं। इसलिये तेज प्रकृति का शब्द बोलना इनके लिए स्वाभाविक है।

"**वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम्। अनिरुद्ध इति ब्रह्मन् मूर्तिव्यूहोऽभिधीयते**।।

स विश्वस्तैजसः प्राज्ञस्तुरीय इति वृत्तिभिः।।" लक्ष्मण जी को तैजस प्रकृति के होने के कारण उनके मुख से ऐसा वचन निकला है। क्योंकि "**जेही बस नर अनुचित करहीं...**।बा. 277।" इस प्रसंग में वाल्मीकि रामायण में दोषों की गणना यों की गयी है, जिन दोषों के चलते लक्ष्मण को क्रोधित होना उचित जँचता है।

1।**भरत के नाना अश्वपति का दोष-** कैकेयी से विवाह के पूर्व ही अयोध्या का राज्य दशरथ जी से भरत को दिलवाना। तथा यह कभी विचलित न होवे इसके लिए कुटनी मंथरा को कैकेयी के साथ अयोध्या भेजना। **2**।पति की सेवा या भलाई करना स्त्री का परम धर्म है किन्तु सेवा के बदले में कैकेयी को वरदान माँगना। **3**।वरदान में केवल भरत को राज्य ही नहीं बल्कि राम जी को राज्य के बदले जंगल देना। **4**।जंगल में भी चौदह वर्ष तक तपस्वियों के कठिन नियम का पालन करना। **5**।वनवास अवस्था में अन्नादि नहीं कन्द मूल ही खाना इत्यादि दोषों का प्रधान कारण भरत को ही समझ लखन जी क्रोधित हुए हैं और कहते हैं कि "**प्रकट करौं रिस पाछिल आजु**।" भगवान के प्रेमवश लक्ष्मण की ऐसी दशा है।क्योंकि श्रृंगवेरपुर में '**निषादपति शंकामकरोत्**।' अर्थात् निषादराज के श्रृंगवेरपुर में रात्रि में जब भगवान् कुशासन के ऊपर सोये थे तो उस समय लखन जी के

मन में शंका हुई कि राजा से राजा को परस्पर शत्रुता छिपी हुई रहती है तो हो सकता है कि निषादराज रामजी के प्रति कुछ अनिष्ट करे। अतः मुझे सजग होकर रहना चाहिए।

निषादराज भी भक्तिरस में सरोबोर था, वह भी यही सोचता है कि एक भाई के चलते श्री राम जी को प्रवासित होना पड़ा है, वैसे ही एक भाई साथ है तो शायद रामजी के शयनावस्था में ये कुछ घात न कर बैठें। अतः जाग कर हमें इनकी रक्षा करनी चाहिए और ऐसा ही किया भी। इधर निषादराज के प्रजागण भी यही सोचे कि हमारे प्रभु श्री राम जी के दो शत्रु, एक भाई और दूसरा राजा, घात करने के लिए मौका ढूढ़ते हुए जगे हैं, ऐसी परिस्थिति में हम सबों को जागकर श्री राम जी की रक्षा करनी चाहिए। ऐसे श्री राम जी के प्रेमवश जैसे इस प्रसंग में तीनों मिथ्या भ्रम में पड़कर एक दूसरे के प्रति सशंकित हैं, उसी प्रकार श्री राम जी के प्रेमवश लखन जी भरत जी के प्रति शंकित हो व्यर्थ क्रोध और दोषारोपण कर रहे हैं।

इसी प्रकार भरत जी भी श्री राम जी के प्रेमवश होकर ही पूज्य पिता, गुरु वशिष्ठ, मन्त्री सुमन्त तथा श्री राम जी के वचनों को भी न मानकर अपना स्वरूपानुरूप शेषत्व के रक्षार्थ श्री राम जी को मनाने जंगल गये हैं। क्योंकि अपना रक्षक केवल एक श्री राम जी को ही माने हैं - "**हमरे शरण राम की पनही**।।" श्री राम जी भी यही - "**तात वचन अरु मातु मत भाई भरत से राऊ। हम कहँ दरश तुम्हार प्रभु सब निज पुण्य प्रभाऊ**।अयो. **125**।" कहकर भरत की गौरवता को महत्व देते हैं। देवतागण भी यही कहते हैं "**भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम राम जपु जेही**।अयो. **217**।**4**।" संसार में भरत जी के समान रामजी का प्रेमी दूसरा कोई नहीं है। क्योंकि राम जी को संसार भजता है और राम जी भरत जी को भजते हैं।अैर भी है -

"**जड़ चेतन जग जीव घनेरे। जिन हेरे प्रभु जिन प्रभु हेरे**।।" "**तिन सब भये परमपद जोगू। भरत दरश मेटे भय रोगू**।अयो. **216**।**1**।" याने श्री राम जी के दर्शन से मोक्ष की योग्यता हुई किन्तु भरत जी के दर्शन से मोक्ष हुआ। ऐसा क्यों - "**यह बड़ बात भरत के नाहीं। सुमिरत जिनहीं राम मनमाहीं**।अयो. **216**।**2**।" इसीलिए भरत जी के सम्बन्ध में भरद्वाज जी ने कहा है कि "**तात तुम्हार विमल यश गाई। पाइहिं लोकहूँ वेद बड़ाई**।अयो. **206**।**1**।" अर्थात् भरत के यश को गान करके लोक और वेद बड़ाई पावेगा। "**भरत महा महिमा सुनु रानी।जानहिं राम न कहहि बखानी**।अयो. **288**।**1**।" भरत जी की महिमा जानने में भगवान् का सर्वज्ञ गुण काम करता है लेकिन कहने में भगवान् का सामर्थ्य काम नहीं करता क्योंकि वह महिमा असीम है।

श्रीकृष्ण के प्रेमवश होकर यशोदा ने पूतना को मारने के पश्चात् श्रीकृष्ण के ग्रहादि दोष दूर करने के लिये - अभिषेक, स्वत्ययन वाचनादि करवाया था। दृष्टि दोष दूर करने के लिए अन्यान्य यत्न भी करवाया था किन्तु वास्तविक श्रीकृष्ण तो दोषाविष्ट नहीं थे। इसी प्रकार लखन जी ने भी केवल रामजी के प्रेमवश होने के कारण ही भरत जी पर इस तरह दोषारोपण किया है।

अथवा लीलाभाव में मनुष्यों में प्रायः षड्विकार उपस्थित पाया जाता है और समय आने पर यही विकार अनर्थ अकृत्य भी करवाया करता है। लखन जी ने स्वयं कहा है - "**...क्रोध पाप के मूल। जेहिं बस जन अनुचित करहिं चलहिं विश्व प्रतिकूल**।बा. **277**।" जैसे भूताविष्ट पुरुष विपरीत काम करता है, वैसे ही क्रोधाविष्ट पुरुष भी कौन अनर्थ नहीं करता। इसी से यह आत्मा का वैरी कहा गया है - "**काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः। महाशनो**

महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।गी.2।37।" रजोगुण से उत्पन्न होने वाले ये काम और क्रोध, महान् पापी हैं और आत्मा के शत्रु हैं। पूर्व में तो लखन जी नीतिरस में पगे थे - "**सहसबाहू सुरनाथ त्रिशंकू।केहि न राजमद कीन्ह कलंकू**।अयो. 228।1।" किन्तु पूर्वोक्त कारणों से वह शीघ्र बदलता है, और - "**इतना कहत नीतिरस भूला।रणरस विटप फूल जनु फूला**।अयो. 228।3।" इस प्रकार क्रोधाविष्ट लक्ष्मण जी प्रतीत होते हैं। किन्तु भरत जी तो विल्कुल विशुद्ध ही थे- "भरतहिं जानु राम परिछाहीं।" याने भरत जी राम जी के परिछाहीं की तरह हैं, प्रतिविम्बी की चेष्टा प्रतिविम्ब करता है। अथवा प्रतिविम्बी एक है किन्तु प्रतिविम्ब तो अनेक हो सकता है। भाव यह है कि भगवान् श्री राम जी यदि एक गुणा देवताओं की भलाई करेंगे तो भरत जी अनेक गुणा करेंगे। दूसरा भाव यह है कि जैसे क्रोधाविष्ट अवस्था में लखन जी जैसे व्यक्ति भी निर्दोष के ऊपर दोषों का पहाड़ ढ़हाये हैं तो यह संसारियों को शिक्षा है कि क्रोधरूपी भूत से हमेशा हम लोगों को बचना चाहिये।

मानस प्रसंग 15 । जटायु ।

इस प्रकृति मण्डल में ब्रह्मा से लेकर चीटीं पर्यन्त सभी प्राणियों का शरीर प्राकृत है। सबों में जीवात्मा तथा अन्तर्यामी भगवान् समान रूप से वास करते हैं। मृत्तिका पात्रों में परस्पर भिन्नता रहते हुए भी सबों का उपादान कारण में समानता जैसे पायी जाती है उसी प्रकार आत्मा के संस्कार स्वभावादि के कारण मिले शरीरों में भिन्नता रहने पर भी सबों का उत्पादक प्रकृति एक ही है। परमात्मा की ही अध्यक्षता में स्वकर्मानुसार सबों को देह मिलता है। और जबतक परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती तबतक प्राणी संसारचक्र में घूमता रहता है। जिस देह से परमात्मा की शरणागति तथा सेवा भजन पूजा की जाती है, वही देह सार्थक है- और भगवत् प्रिय भी है- "**सोई पावन सोई सुभग शरीरा।जेहि तनु पाय भजिय रघुवीरा**।उ. 95।1।" और जिस शरीर से शुभ पवित्र भगवत् सेवा नहीं की जाती वह - "**राम विमुख लह विधि सम देही।कवि कोविद न प्रशंसहीं तेही**।उ. 95।2।" ब्रह्मा के समान देह भी निन्दनीय है। "**विप्राद्विषड्गुणयुतादरविन्दनाम पादारविन्दविमुखात् श्वपचं वरिष्ठम् ...**।।" - "**शमोदमस्तपश्चैव शान्त्यार्ज वविरत्ता।ज्ञानविज्ञानसंतोषः सत्यास्तिक्यो द्विषड्गुणाः**।" अर्थात् ब्राह्मण कुल में जन्मलेकर उपरोक्त बारह गुणों से युक्त रहने पर भी यदि वह भगवान् से विमुख हो, तो उससे भगवत्भक्त चाण्डाल ही श्रेष्ठ है। "**श्वपचोऽपि महीपालविष्णुभक्तः द्विजादिकः। विष्णुभक्तिविहीनस्तु यतीस्तु श्वपचाधिकः**।।" भगवत्भक्ति विहीन ब्राह्मण यदि चतुर्थाश्रमी भी हो तो उससे भगवद्भक्त चाण्डाल श्रेष्ठ है। काकभुशुन्डी जी से यह प्रश्न किसी ने किया कि आप मनुष्य, ब्राह्मणादि का शरीर क्यों नहीं धारण करते ? तो उसके उत्तर में उन्होंने कहा कि - **ताते यह तन मोहि प्रिय भयेउ रामपद नेह**।उ. 114।" "**यह तन रामभक्ति मोही जामी। ताते मोही परमप्रिय स्वामी**।उ. 95।2।" याने इस शरीर में मुझे राम भक्ति मिली और भगवान् प्रिय लगते हैं इसीसे यह शरीर मुझे अत्यन्त प्रिय है।जटायु ने भी इसी प्रकार श्री राम जी से कहा है """**सीतां च रक्षयिष्ये त्वयि याते सलक्षमणः**।वा. रा. अर. 14।33।" हे तात ! आप दोनों भाई जब जंगल जायेंगे तो मैं जानकी की रक्षा करूँगा। """**जटायुषं तं परिपूज्य राघवो मुदापरिष्वज्य च सन्नतोऽभवत्।पितुर्हि शुश्राव सखित्वमात्म वा जटायुषा संकथितं पुनः पुनः**।वा रा अर 14।33।"

जटायु ने दशरथ जी से मित्रता की बात बार बार कहा जिससे श्री राम जी उनको प्रणाम कर हृदय से लगाये। पिता के मित्र समझकर गिद्ध जटायु को प्रणाम करना तथा हृदय से लगाना यह राम जी की भक्ति की महिमा है।

जटायु सीता हरण काल में सीता को चुराने के लिए रावण से घनघोर युद्ध किये। इस युद्ध में रावण ने इनका दोनों पाँख अपनी तलवार से काट डाला - "**पक्षौ पार्श्वौच पादौ च खड्गमुद्धृत्यसोऽच्छिनत्**।वा. रा. अर. 51।42।"सो जटायु पड़े पड़े सोचते हैं - "**मेरो एकउ हाथ न लागे गयो बीति वादि कानन ज्यों, कलपलता दवलागी। दशरथ सो न प्रेम प्रतिपाल्यो, हुतो सकल जग साखी।वरवश हरत निशाचरपति सो, हठि न जानकी राखी।मरत न मैं रघुवीर विलोक्यो, तापसवेष बनाये।चाहत चलन प्राण पीवर बिनु ,सिय सुधि प्रभुहि सुनाये। बार बार कर मींजत सिर धुनि, गीद्धराज पछितायी।तुलसी प्रभु कृपाल तेही अवसर आइ गये दोउ भाई।**।गीतावली अरण्य 12।" कि मेरी देह निरर्थक कामों में विनष्ट हो गयी मानों कल्पलता को दावाग्नि जला दी हो। यदि मैं भी दशरथ के समान राम जी के वियोग में मर जाता तो इसका साक्षी संसार होता। रावण से जानकी को भी नहीं छीन सका, मरते समय श्री राम जी दर्शन भी नहीं दे सके, सीता की करुणापूर्ण दशा कों भी मैं भगवान को नहीं जना सका, यह पाँवर प्राण शरीर से निकलना चाहता है, यह जटायु का पश्चात्ताप है। विशेषता तो यह है कि प्राण वियोग का पश्चात्ताप नहीं, किन्तु इस देह से कोई भगवत् कार्य नहीं हुआ यह चिन्ता है। लेकिन तबभी अन्तर्यामी सर्वव्यापक भगवान् जटायु के हृदय में दर्शन का संकल्प होते ही शीघ्रातिशीघ्र आते हैं - और जटायु दर्शन कर कृत कृत्य हो, बोला - "**तं दीन दीनया वाचा सफेन रूधिरं वमन्।अभ्यभाषत पक्षीश रामं दशरथात्मजम्**।वा रा अर.67।14।"- "**नाथ दशानन यह गति कीन्हा।सो खल जनकसुता हरि लीन्हा**।अर. 30।1।" - हे भगवान् ! मेरी वर्तमान दशा का कारण यह है कि मैंने सीता को ले जाते रावण को देखा - और उससे छीनना चाहा। पर महाबलवान् उससे पार नहीं पाया। उसीने मेरे अंगो को इस तरह काट दिया है - तथा सीता को लंका ले गया है - "**त्वया विरहिता देवी लक्ष्मणेन च राघव। ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन वलीयसा**।वा रा अर.67।16।" गीध की यह दशा देखकर भगवत् वत्सल भगवान् बोले "**अयन्तु पितुर्वयस्कोमे गृधराजो महाबलः।शेते विनिहितो भूमौ मम भाग्यविपर्ययात्**।वा रा अर 67।27।"हे लक्ष्मण! पितातुल्यवयस्क गृद्धराज मेरे दुर्भाग्य से इस दशा में पड़े हैं - "**ममाय नूनमर्थेषु यतमानो विहंगमः।राक्षसेन हतः संख्ये प्राणांस्त्यक्ष्यति दुस्त्यजान्**।वा रा अर 68।2।" और प्रियप्राण छोड़ना चाहते हैं। यह कहकर भगवान् जटायु को गोद में ले लिये। लिया "**राघव गीद्ध गोद कर लीन्हौं। नयन सरोज सनेह सलिल शुचि मनहुँ अरघ जल दीन्हौं।।सुनहु लखन खगपतिहिं मिले वन मैं पितु मरण न जान्यो।। सहि न सक्यो सोऽपि कठिन विधाता बड़पक्ष आज ही भान्यो।बहुविध राम कह्यो तन राखन परम धीर नहीं डोल्यो।।तुलसी प्रभु झूठे जीवन लगि समय न धोखो लैहौं। जाके नाम मरत मुनि दुर्लभ तुम्हहिं कहाँ पुनि पैहों**।गीतावली अरण्य 13।"

जटायु के खुन से लथपथ शरीर को आगे से भगवान और पीछे से लक्ष्मण दोनों अपने अपने गोद में लिये हुए हैं, देह में लगी धूल को भगवान अपनी जटाओं से पोछते हैं, उनकी आँखों से अविरल अश्रुधार बह रहे हैं, जो जटायु के मुख में अर्घ्यजल की तरह गिर रहा है। कंठ रुद्ध है, लक्ष्मण से कहते हैं भाई! पिता जी के मित्र जटायु के मिलने से पिता मरण का सोच नहीं था, किन्तु इनको मर जाने से फिर अब वह सोच सतायेगा। इनके रहने से मेरा पक्ष सबल था अब वह गिर जायेगा इत्यादि। इस तरह रोते हुए जटायु को शरीर रखने के लिए कहते हैं। किन्तु परमवीर तत्वज्ञानी जटायु इस कथन को नहीं स्वीकार करते और कहते हैं, परमात्मा के गोद की मृत्यु जो आज तक किसी को भी नहीं मिली, तो इस अलभ्य लाभ को क्यों मैं झूठे से जीवन से बदल दूँ।

भक्तों की देह भगवान् को अत्यन्त प्रिय है। इसीलिए श्री राम जी जटायु को शरीर रखने के लिए कह रहे हैं - """**देहो वै स हरिप्रियः**" - "**सोई पावन सोई सुभग शरीरा। जेही तनु पाय भजिये रघुवीरा।**उ. 95।2।" "या गतिः यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्च या गतिः। "**अपरावर्तिनां या च या च भूमिप्रदायिनाम्।**वा रा अर 68।29।" याने यज्ञादि करने वाले को जो गति मिलती है, जो गति आहिताग्नियों को मिलती है वही गति जटायु को भी मिली। "**मया त्वं समनुज्ञातो गच्छ लोकमनुत्तमम्।।**68।30।""**पश्य लक्ष्मण गृद्धोऽयमुपकारी हतश्च मे।**68।22।" "**मम हेतोरयं प्राणान्मुमोच पतगेश्वरः।**68।23।" लक्ष्मण ! यह उपकारी जटायु मेरे लिए परमप्रिय प्राण को भी छोड़ दिये हैं। ऐसे भक्त जटायु को मोक्ष मिला - "**गिद्ध देह तजि धरि हरिरूपा।भूषण बहुपटपीत अनूपा।। श्यामगात विशालभुज चारी।अस्तुति करत नयन भरि वारी।।**अर. 31।1।" जटायु पूर्व शरीर को छोड़कर, भगवान् के ही सदृश श्यामगात, चतुर्भुज अनेकों प्रकार के भूषण वसन धारण किये हुए मोक्ष स्थान वैकुण्ठ को गये। पश्चात् - ददाह रामो धर्मात्मा बन्धुभिर्वहुदुःखितः।68।31।" श्री राम जी जटायु की मृत्यु से अत्यन्त दुःखी हो लक्ष्मण के साथ उनकी मृत देह का ब्रह्ममेध संस्कार पूर्वक दाह संस्कार तथा अन्यान्य शास्त्र विहित पिण्डादि किये। "**स्थूलान् हत्वा महारोहीननुस्तार तं द्विजम्।रोहिमांसानि चोदधृत्य पेशीकृत्वा महायशाः।**68।32-33।" वनवास अवस्था में श्री राम जी कन्द मूल फलादि भोजन करते थे, अतः दशरथ जी को ईंगुदि विरारादि फलों से पिण्ड दिये हैं। इस प्रकार इनको भी रोहिकन्द का पिण्ड दिये हैं - "**यदन्नः पुरुषोभवति तदन्नतस्य देवता**" - स्वकीय आहार का ही पितृ या देवताओं को पिण्ड दिया जाता है। भगवान् भक्तों के हृदयस्थ भावना को भलीभाँति जानते हैं तथा भक्त का किया दिया अणु मात्र को भी मेरु तुल्य समझ, तदनुकूल फल देकर बराबर के लिए उसका आभारी बन जाते हैं - "**नीके जानत राम हियो हैं।प्रणतपाल सेवक कृपालुचित पितु पटहरहिं दियो हौं।।तिर्यक योनि गीध जनम भरि खाई कुजन्तु जियो हैं।महाराज सुकृति समाज सब उपर आज कियो हौं।।श्रवण वचन मुख नामरूप चख राम उछंग लियो हौं।तुलसी मो समान बड़भागी को कहि सकै वियो हौं।।**गीतावली अरण्य 14।" भगवान् श्री राम जी जटायु को अपने पिता के तुल्य समझे हैं। जो जीवन भर निषिद्ध वस्तु खाकर रहा है उसको भी मुनिगणों से आगे बढ़ा दिये। मृत्यु काल में अपनी गोद में रखकर मरने पश्चात् भी भूमि में न रख, दाहार्थ चिता पर रख संस्कार किये हैं।

जटायु के प्रतिकूल तथा अनुकूल साधन ।

1।पूर्वकृत पाप द्वारा तिर्यक योनि में जन्म लेना। 2।आजन्म हिंसा करना।

1।दशरथ जी से मित्रता। 2।राम जी से मिलन। 3।भगवान् का कार्य (कुटी अगोरना सीता के लिये युद्ध करना)। 4।राम जी के प्रेम पात्र बनना। 5।राम जी से पितातुल्य पद प्राप्त करना। 6।राम जी के गोद में बैठना। 7।रामचन्द्र जी से तर्पित होना। 8।मरणकाल में राम जी को सन्मुख रहना। 9।इसीलोक में राम जी के सामने स्वरूप पाना। 10।इसीलोक से विमान पर बैठकर वैकुण्ठ जाना। 11।जटायु की मृत्यु से राम जी का रोना। 12।सविधि ब्रह्ममेध संस्कार करना। 13।श्री राम जी को जटायु के साथ पिता का सम्बन्ध जोड़ उनके साथ पुत्र का उचित व्यवहार करना। याने जो पितरों को नरक से बचाता है उसे पुत्र कहते हैं। "**पुंनाम नरको यस्मात्तस्मात्तारयते सुतः।**"

लखन लाल दशरथ जी को फटकार तथा निन्दा भी किये थे। किन्तु जटायु के लिये तो ये भी दुःखी हुए तथा संस्कार भी प्रेम से किये हैं। एक ओर गीध का अपवित्र देह और दूसरी ओर मुनि दुर्लभ गति - "**गीध**

अधम अति आमिष भोगी" उसको भी - **"तेही गति दीन्ह जो जाचत योगी"**- यह भक्त परवश्यता गुण के कारण परमात्मा की कृपा का प्रसाद है। और इसमें प्रधान कारण भगवान् के प्रति प्रेम ही है। प्रेम द्वारा यदि भगवान् इस तरह नीच योनि में रहने पर भी उत्तम गति देते हैं, तो पवित्र मनुष्यों के लिए कहना ही क्या है - "किं पुनर्ब्राह्मणा पुण्याः भक्ता राजर्ष यत् तथा" कोई भी देहधारी क्यों न हो भगवान् की ओर झुका कि भगवान् उसे साट लेते हैं। जैसे - राक्षसों में विभीषण, दैत्यों में प्रह्लाद, अन्त्यजों में निषाद तथा शबरी इत्यादि को। "**किरातहूणांध्रपुलिन्दपुक्कसाः आभीर कंका यवनाः स्वसादयः। अन्ये च पापाः यदुपाश्रयाश्रयाः शुद्धयन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः**।भा. 2।4।18।" इन नव -संकर जातियों से भी निकृष्ट जातियों में यदि भगवद् भक्ति हो तो वह पवित्र माना गया है।

मानस प्रसंग 16। सुन्दरकाण्ड के कुछ प्रसंग।

"**जामवन्त के वचन सुहाये।सुनि हनुमान हृदय अति भाये**।सु. का. चौपाई 1।" यहाँ यह प्रश्न होता है कि जाम्बवान् के सुन्दर वचन कौन से हैं? उत्तर - "**कहे ऋक्षपति सुनु हनुमाना।का चुप साधि रहे बलवाना।।पवनतनय बल पवन समाना। बुधि विवेक विज्ञान निधाना।।कवन सो काज कठिन जगमाहीं।जो नहीं तात होय तोहि पाँही।।रामकाज लगि तव अवतारा।सुनि कपि भयउ पर्वताकारा।**।कि. 29।1 से 3।"

श्री राम की सहायता में (सीता अन्वेषणार्थ) सुग्रीव की सेनाओं की जत्था तैयार की जा रही है। चतुर्चपल बलवानों का अन्वेषण प्रारम्भ है इसी क्रम में हनुमान की भी बारी आयी, तब जाम्बवान् बोले, ऐ हनुमान् ! कुछ लोग अपना अपना बल का परिचय दिया, किन्तु आप क्यों चुप साधकर बैठे हैं। आप तो पवन के पुत्र हैं, तुम्हारे पिता जैसे बलवान् तथा व्यापक हैं उसी प्रकार तुम भी हो। याने जैसे पवन स्वभावतः समुद्र को अनायास पार किया करते हैं इसी प्रकार तुम भी अनायास समुद्र पार कर सकते हो। तुम बुद्धि तथा ज्ञान विज्ञान के निधान हो। तात्कालिक कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार रखते हो। ज्ञान से आत्मस्वरूप तथा विज्ञान से परस्वरूप को भली भाँति जानते हो। इस संसार में ऐसा कोई भी कठिन काम नहीं है - जिसको तुम नहीं कर सकते। श्री राम जी के कार्य के लिये तो तुम्हारा अवतार ही है। यह सुनते ही हनुमान पर्वत के समान अपना रूप धारण किया।

उपरोक्त जाम्बवान् के कथनों के अध्ययन से यही पता चलता है कि जो भी जाम्बवान बोले हैं वे सब हनुमान की बड़ाई की बातें हैं। सज्जन पुरुष अपनी प्रशंसा नहीं सुनना चाहते। उन्हें स्वप्रशंसा विष के तुल्य प्रतीत होता है, तो यह प्रशंसा सुन, हनुमान क्यों प्रसन्न हुए जब वे **"ज्ञानीनामाग्रगण्यम्"** हैं। बल्कि उनको सन्मुख की गयी प्रशंसा से लज्जित होना चाहिए था। यह इस प्रसंग पर प्रश्न होता है।

तथा हनुमान की प्रशंसा में मर्यादा का भी उल्लंघन किया गया है - जन्म को कहने के लिए तीन तरह के शब्दों को व्यवहार में लाया जाता है। ईश्वर तथा देवता के लिए अवतार शब्द, मुनियों के लिए जन्म, और पशु पक्षियों के लिए बियाना शब्द। किन्तु राम जी के लिए तो - **"राम जन्म सुखमूल"**और हनुमान के लिए - "तव अवतारा"। यह अतिप्रशंसा हुई यह क्यों? उत्तर - जाम्बवान के कथनों में - **"का चुप साधि रहे बलवाना"** - से **"जो नहीं तात होए तोही पाहीं"**- तक - हनुमान सुने या नहीं सुने - या इनको कहते हुए भी अनसुनी कर दिये क्योंकि ज्ञानी होकर अपनी प्रशंसा क्यों सुनते ?**उत्तर**- भगवान् के विष्णु रूप में गरुड़ नित्य पार्षद हैं - और

रामरूप में हनुमान, ये भगवान् की सेवा ही के लिए बन्दर रूप में अवतीर्ण हुए हैं, इसीलिए जाम्बवान इनके लिए अवतार शब्द का प्रयोग किये हैं जो उचित हैं।

इसी विषय को हनुमान को भी स्मरण कर सामान्य और विशेष बन्दरों के केन्द्र से अलग - उनलोगों का पयान कर जाने के बाद सबसे पीछे श्री राम जी के पास आये और प्रणाम किये। **"पीछे पवनतनय शिरनावा" इसी** के अनुकूल श्री राम जी भी **- "जानि काज प्रभु निकट बुलावा"** - यह जानते हैं कि मेरे ही कार्यार्थ हनुमान दिव्यदेह से आये हैं। किन्तु उस दिव्यदेह को छिपाकर प्राकृत बन्दर बने हुए हैं। इसीलिए श्री राम जी हनुमान को समीप बुलाकर, मस्तक स्पर्श कर **"परसा शीस सरोरुह पानी।कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी।**कि. **22।5।"** - अपनी दिव्य मुद्रिका दिये, जो अन्य बन्दरों को देने योग्य नहीं था। क्योंकि वह मुद्रिका सुदर्शन मन्त्र यन्त्र घटित थी।

हनुमान दिव्यदेहधारी होने के कारण मुद्रिका ले जाने योग्य थे। हनुमान भी योग्य सेवा प्राप्त होने से देह की सार्थकता समझे। इसीलिए भगवत् कार्य में लग जाने वाले शरीर की उत्पत्ति को अवतार कहना युक्तियुक्त है। हनुमान को प्रसन्नता यही भगवत् कैंकर्य से मिली है न कि अपनी प्रशंसा सुनकर। **"बुद्धिन्द्रिय मनः प्राणाः लोकानामसृजत्प्रभुः।मात्रार्थश्च भावार्थश्च आत्मने कल्पनाय च।।"**बुद्धि, इन्द्रिय, मन प्राणादि भगवान् को निवेदित करना चाहिए, देह इसी के लिए मिली है, जाम्बवान हनुमान को शेषत्व रूप का स्मरण दिलाये हैं। इससे हनुमान को आत्मस्वरूप ज्ञान का लाभ हुआ और इससे बढ़कर दूसरा अन्य कुछ भी नहीं - **"नात्मलाभात्परं किञ्चित" अतः हनुमान को अत्यन्त आनन्द हुआ है। "दौष्कुल्यमाधिविधुनोति सर्वं महत्तमानांभिधानयोगः।"** महापुरुष भगवत् भक्तों की संगति, अश्कुलीनता तथा मानसिक चिन्ताओं को नष्ट कर देती है। **"अहो वयं धन्यतमा येषाः नष्टाद्रशी स्त्रियः"** याने भगवत् प्रेमी से सम्बन्धित होने वाला धन्य है।

जाम्बवान के प्रेरणा का फल सीता जी की प्रसन्नता हुई है - **"बूड़त विरह जलधि हनुमाना। भयऊ तात मो कह जलयाना।13।1। अजर अमर गुणनिध सुत होहु।सदा करहीं रघुनायक छोहू।16।2।"** जाम्बवान की प्रेरणा से ही अपने कार्य करने की कृतज्ञता में राम जी हनुमान को हृदय से लगाकर कहते हैं। **"सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहीं कोउ सुरनर मुनि तनुधारी।। प्रतिउपकार करौं का तोरा।सन्मुख होई न सकत मन मोरा।। सुनु सुत तोहि उऋण मय नाहीं। देखउ करि विचार मन माहीं।। पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता।31।3, 4।"** श्री राम जी हनुमान जी से कहते हैं कि तुम्हारे ऐसा उपकारी इस विपत्ति में दूसरा कोई नहीं मिला। इस उपकार का बदला मुझसे नहीं बन सकता। अतः मेरा मन लज्जा और संकोचवश तुम्हारे सन्मुख नहीं होना चाहता। इसलिए**"ममांके जीर्णताम् यातु यत्त्वयोपकृतं कपे।**वा. रा. उ. **40।24।"**तुम्हारा उपकार मेरे शरीर में ही जीर्ण हो जाये। भाव यह है कि जैसी विपत्ति में मुझे तुम सहायता किये हो, वैसा संकट तुम्हें नहीं आये कि मुझे भी कुछ करना पड़े। तुम्हारा उपकार मेरे यहाँ ही धरोहर रह जाये, मैं सदा तुम्हारा आभारी बना रहूँगा। इस तरह राम जी हनुमान से कहते हुए गद्गद तथा रोमांचित हो रहे हैं। उनके नेत्रों से अश्रु जलधार वह रहा है। प्रेम का बीज जाम्बवान का वह वचन था जो हनुमान को अच्छा लगा था। जाम्बवान हनुमान को ऐसा उपदेश इसलिए दिया कि अध्ययन काल में हनुमान कभी प्रतिपद्य को पढ़े थे अतः भूल जाने का स्वभाव हो गया था, उनके स्मरण दिलाने पर ऐसा हर्ष हुआ कि वे पर्वताकार हो गये और उनसे पूछते हैं कि आप यह तो बताईये कि - **'लिलौं**

लांघेउ जलधि अपारा'**'सहित समाज रावनहि मारी।आनौ यहाँ त्रिकूट उपारी।।**' मैं इस समुद्र को निगल जाऊँ या लांघ जाऊँ या परिवार सहित रावण को मारकर जानकी को ले आऊँ ? या लंका का जड़ त्रिकूट पर्वत को ही उखाड़ ले आऊँ , और राम जी के सामने रख दूँ चाहे श्री राम जी जो करें। इसलिए - **'उचित सिखावन दीजिये मोहि'**।कि.29।4 से 5। मुझे आप उचित कर्त्तव्य पथ बताइये।हनुमान के इन वचनों को सुनकर जाम्बवान यह सोचे कि हनुमान तो सबकुछ करने में समर्थ हैं किन्तु यदि समुद्र को लीलेंगे तो रत्न समेत जल जन्तुओं का नाश हो जायेगा, तथा मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम जी के कुल पूर्वजों की कृति समुद्र का विनाश हो जायेगा। त्रिकूट पर्वत को भी उखाड़ कर ले आना अनुचित ही होगा, क्योंकि वह स्वर्ण के रहते हुए भयानक राक्षस की माया से निर्मित है। अतः श्मशानतुल्य अपवित्र है। जहाँ इसको उखाड़ रखेंगे उस पवित्र भूमि को भी यह आच्छादित करेगा। भारत भूमि अति पवित्र है जिसकी पवित्रता के सम्बन्ध में देवतागण कहते हैं कि **"गायन्ती देवाः किलगीतकानि धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे"** अतः जिस स्थल को वह आच्छादित करेगा उतनी भूमि सदा के लिए अपवित्र हो जायेगी। यदि ये हनुमान रावणादि राक्षसों को मारकर जानकी को ले आवेंगे तो भी रामजी के बलसामर्थ्य में दोष लगेगा, यश की हानि होगी, संसार में यही प्रचार होगा कि यदि हनुमान जी नहीं रहते तो श्री राम जी जानकी को नहीं प्राप्त कर सकते थे ऐसी उनकी अपकीर्ति होगी। अतः - "**एतना करहु तात तुम्ह जाई ।सीतहि देखि कहहु सुधि आई।**कि. 29।6।" भाई हनुमान!आप लंका में जाकर केवल जानकी का समाचार ले श्री राम जी को सुनाइये, और कुछ भी नहीं कीजिये।तब श्री राम जी- **"कपि सेन संग संहारि निश्चर राम सीतहि आनिहैं।"**सैन्य समूहों को लेकर स्वयं रावणादि को मारकर जानकी को ले आयेंगे। जिस यश को संसार गाया करेगा। इन्हीं बचनों को सुनकर हनुमान अत्यन्त प्रसन्न हुए कि शरीर धारण के यही उच्च्य कोटि का परम स्वार्थ तथा भगवत् सेवा है इसलिए जाम्ववान हमको निर्देश कर रहे हैं।

श्री मानस में रामायण में दोहा या सोरठा को विराम माना गया है। और सभी काण्डों में विराम दोहा या सोरठा से प्रारम्भ किया गया है किन्तु इस सुन्दर काण्ड में विना विराम का ही प्रारम्भ है। इसमें प्रधान कारण यह है कि हनुमान उत्तम अधिकारी हैं, उच्च्य कोटि के भागवत हैं। लंका जाते समय मैनाक जब अपने ऊपर विराम करने के लिए इनको कहा है तो ये उससे कहे कि **"राम काज कीन्हें विना मोही कहाँ विश्राम"**भगवान् श्री राम का कार्य सम्पन्न किये विना मुझे विश्राम का अवकाश कहाँ ? मैं तो उस कार्यसिद्धि के लिए बेचैन हूँ। ज्ञानीजन भगवान् की सेवा किये विना विश्राम नहीं लेते, तबतक उन्हें विकलता रहती है, सेवापूर्ति से ही विश्राम मिलता है। यही भाव सूचित करने के लिए इस काण्ड में विराम (दोहा) बिना ही चौपाई प्रारम्भ किया गया है। भक्ताग्रगण्य हनुमान यही सबों को शिक्षा देते हैं।

यदि यह प्रश्न हो कि हनुमान अन्यत्र तो बराबर विश्राम किये हैं तो यहाँ क्यों ऐसा सोचते हैं ?तो इसका उत्तर यह है कि अन्य जगहों में हनुमान सेनापतियों के अनुकूल रहते थे और यहाँ स्वच्छन्द हैं, कार्य का दायित्व अपने ऊपर समझते हैं - इसीलिए विराम अच्छा प्रतीत नहीं होता है। किष्किन्धा और सन्दर काण्ड में सम्बन्ध जोड़ा हुआ है। कारण कि जामवन्त किष्किन्धा में प्रश्न करते हैं और सुनना या हनुमान जी का जवाब देना सुन्दर काण्ड में है - इसलिये दोनों को जोड़ दिया गया है। **इतिशम्**।

।। श्रीमते रामानुजाय नमः ।।

"तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुन्दर।।

चकित चितय मुंदरी पहिचानी। हर्ष विषाद हृदय अकुलानी।।

जीति को सकय अजय रघुराई। माया ते असि रचि नहीं जाई।। सु. **12**।**1** एवं**2**।"

उक्त चौपाईयाँ सुन्दर काण्ड के उस प्रसंग की है - जब भगवान श्री रामचन्द्र जी सीता जी के साथ पिता माता की आज्ञानुकूल अरण्य में निवास कर रहे थे। वहीं से सीता जी रावण के द्वारा चुराई जाकर लंका के अशोक वाटिका में रखी गयी थीं। इन्हीं के खोज में जिस वृक्ष के तले श्री सीता जी थीं उसी वृक्ष पर बैठे हुए हनुमान अवसर पाकर श्री राम जी की दी हुई अंगूठी को परिचयार्थ उनके आगे गिरा दिये। जानकी जी सचकित उसे उठाकर विचारती हैं, यह राम नाम अंकित अंगूठी कहाँ से आयी। परमप्रिय श्री राम जी की प्रिय वस्तु मिलने से हृदय में प्रसन्नता है। किन्तु विषाद भी हो रहा है कि कोई राक्षस श्री राम जी को मारकर या जीत कर तो नहीं ले आया ? पुनः धैर्य धारण कर सोचती हैं कि श्री राम जी तो अकेले चौदह हजार राक्षसों को मेरी आँखों के सामने मार डाले थे। विश्वमात्र के राक्षस उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते, वे तो अजेय हैं। अतः उनको मारकर कोई भी राक्षस इसे यहाँ लाये ऐसा सम्भव नहीं। माया द्वारा भी कोई राक्षस इस अंगूठी को नहीं बना सकता। यह अंगूठी यहाँ कैसे आयी इत्यादि उलझन में पड़ गयी।

यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि उक्त अंगूठी तो किसी कारीगर की बनायी हुई थी तो पुनः ऐसी अंगूठी कोई कारीगर क्यों नहीं बना सकता ? जो माया अनन्त ब्रह्माण्ड को बनाती है, तो क्या उससे ऐसी एक अंगूठी नहीं बन सकती ? अथवा रावण श्री राम जी की मूर्ति बना जानकी के सामने काटा करता था, तो क्या उससे एक अंगूठी नहीं बन सकती ? कि - **"माया ते अस रचि नहीं जाई "** ऐसा जानकी जी कहती हैं?

उत्तर- प्रथम तो यह जानना चाहिए कि श्री राम जी कौन हैं -

"तत्रायोध्यापुरी रम्या यत्र नारायणो हरिः । अयोध्यापुरी चैका द्वितीया मथुरा स्मृताः।।

राम रूपेण रमते सीतया परया सह। रामाविर्भाव रमये समये ह्याविर्भवति सर्वदा।।

कृतावतारो श्रीरामो ह्यनया केलिभूतया। पद्मपुराण।"

त्रिपाद्विभूति में अयोध्या नाम की एक पुरी है वहाँ भगवान् श्रीमन्नारायण राम रूप से जानकी के साथ विराजमान रहते हैं। वही भगवान् जब राम रूप में अवतीर्ण होते हैं तो लक्ष्मी श्रीसीता रूप में आती हैं। वही अयोध्या इस लोक में - **"श्रीरंगाख्यंपरंधाम मममानिनि भूतले।** पद्मपुराण।" भगवान् के अवतारार्थ आयी जो भगवान् के आराधक इक्ष्वाकु को मिली थी। यही पर श्रीरंगनाथ भगवान् इक्ष्वाकु को मिले थे, और इस कुल में दशरथ जी पर्यन्त रहे। यही अयोध्या रंगपुरी भी कहाती है।

"ममकुल इष्टदेव भगवाना" - परम वैष्णव इक्ष्वाकु के पक्षपात के कारण भगवान् इस कुल में अवतार लिये हैं। इक्ष्वाकु कुल वैष्णव कुल है। श्री रामचन्द्र भी श्रीवैष्णव धर्म ग्रहण कर हम सबोंको वैष्णव बनने का निर्देश किये हैं - **"धृत्वा तप्तायसीं मुद्रां देवः रक्षां करिष्यति।"** स्वतः अपने लिए तो - **"न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।** गी. **3**।**22**।" भगवान् को इस लोक में कुछ करना शेष ही नहीं है। वैष्णव धर्म में तप्त शंख-चक्र का धारण प्रधान विषय है। वैष्णवों के लिए तो यह भी लिखा है कि

“**ज्ञात्वा सर्वपदार्थेषु शुद्धिस्तेषां पदेपदे।शालायां भोजने वस्त्रे गृहोपकरणेषु च।।**

चमशोलूखलेपीठे पक्वान्ने चक्रमुल्लिखेत्।पक्वान्नं चक्रसंयुक्तं सेवितं पुरुषेण हि।।

यच्छन्ति चमनः शुद्धिं महापातकिनामापि।पशु पुत्र कलत्रेषु यान वाहन भूमिषु।।वैष्णवों के वस्तु मात्र में उसकी शुद्धि के लिए चक्र का चिह्न होना चाहिए। पाठशाला, पाकशाला, धर्मशाला, गोशाला, भोजनपात्र, टोकना, कड़ाही, कलछुल, ओखल मूसल, चुल्हा चाकी, भोज्य पदार्थ, ठेकुआँ, पेड़ा, बर्फी आदि सर्वत्र चक्र का चिह्न होना चाहिए। चक्रांकित वस्तु खाने से पातकी का भी मन शुद्ध होता है। घोड़ा, हाथी, रथ वाहनादि रहने के स्थान पर घर द्वार चौकठ किवाड़, पहनने का वस्त्र - कुर्त्ता, पगड़ी, चादर, टोपी, विछावन, मसनद, मुकुट, छत्र, चँवर, ध्वजा, पताका, स्त्रियों के भूषण, पुरुषों के सभी अलंकार भोजनपात्र, जलपात्र, पूजासामग्री समूहों में भी चक्र का चिह्न होना चाहिए। अंगूठी या मन्त्रादि धारण के सम्बन्ध में ज्योतिष ग्रन्थों में यों लिखा है - “**सूर्यादीनां मुनिभिरूदिता दक्षिणास्तु ग्रहाणाम्।स्नानैदर्निर्हवन वलिभिस्तेऽत्र तुष्यन्ति यस्मात्।** पुरा।” याने मुनियों ने सूर्यादि ग्रहों के दोष नाश के लिए अंगूठी पहन स्नान, दान, हवन, वलि तथा स्तोत्र पाठादि द्वारा ग्रहों की शांति बतायी है। “**वदन्ति गर्गादि महामुनीन्द्राः धार्य मनुष्यैः शशियन्त्रमीरितम्।**”गर्गादि मुनियों ने मनुष्यों को शशियन्त्र धारण करने को लिखा है। “**बध्नीयात्कण्ठदेशेतु वालानां सूतिकागृहे**” - सर्वारिष्ट निवारण के लिए सुदर्शन यन्त्र धारण करे। “**सौदर्शनं महायन्त्रं घटितं चाङ्गुलीयकम्।धारयैन मनेनैव मृत्युः नश्यति असंशयम्।** पुरा।” इन्हीं सभी विचारों को लेकर जानकी के सभी भूषण आदि तथा राम जी वाली अंगूठी भी चक्रांकित बनी थी। स्त्रियों के पातिव्रत्य सिद्धि के लिए भी धारण किये जानेवाले भूषणों में चक्र का चिह्न होना चाहिए। राम जी की अंगूठी चक्र यन्त्र मन्त्र के साथ राम नामांकित भी थी। इन्हीं सभी महत्वों से युक्त उक्त अंगूठी को देखकर श्री जानकी जी कहती हैं कि “**माया ते अस रचि नहीं जाई।**”

यह अंगूठी परब्रह्म श्री राम जी के कर कमलों में छब्बीस वर्ष तक रही है, अतः सुगंध के स्पर्श से सुगंधित हो जानेवाली अन्य वस्तुओं के समान यह भी ब्रह्म गन्ध से युक्त हो गयी है। यह ब्रह्म गन्ध माया से परे की वस्तु है, इसलिए ऐसी ब्रह्मगन्धी अंगूठी कोई भी नहीं बना सकता। चौपाई में अस शब्द अंगूठी के प्रभाव को जताता है याने सुदर्शन यन्त्र मन्त्र घटित इसका प्रभाव तो ऋषि महर्षि ही जानते हैं। मायिक अनाधिकारियों को तो उसे छुने का अधिकार तथा सामर्थ्य भी नहीं है। हनुमान को दिव्यपार्षद होने से इसको छूने का अधिकारी समझ श्री राम जी - “**कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी**” इनको ले जाने के लिए दिये हैं। हनुमान भी इसके स्पर्श का अधिकार समझ कर ही - “**यह मुद्रिका मातु मैं आनी**”मातु शब्द से अपना सम्बन्ध और मैं शब्द से दासत्व भाव सूचित कर अपने को अधिकारी बताते हैं।

इसका भाव यह है कि इससे भी श्री जानकी जी मुझे पक्का रामभक्त समझें और विश्वास करें कि यदि यह इस प्रभावशाली अंगूठी को लाने का अधिकारी (अनन्य रामभक्त) नहीं होता तो कैसे ला सकता था। इस प्रसंग में चकित होने का दो कारण है, एक तो राम जी को जीतना, दूसरा अंगूठी लाने वाले के सामर्थ्य के विषय में। इस प्रभावशाली अंगूठी को धारण करनेवाले श्री राम जी हैं या आप हैं इसीलिए - “**दीन्ह राम तुम कहँ सहिदानी**” भगवान आप के लिए दिये हैं। (”सहिदानी” सः रामः हि निश्चयेन, दानी, दाता) आपके लिए धैर्यता दिये हैं, अर्थात् आप धैर्य धारण करो मेरे हाथों सुरक्षित हो।

इस विषय में कितने भावुक रामायणियों का यह कहना है कि वह अंगूठी दिव्य साकेत की थी इसीलिए जानकी जी कहती हैं कि **"माया ते ..."**किन्तु यहाँ यह भी विचार करना आवश्यक है कि वह साकेत विहारी श्री राम जी इस समय स्वयं जब अपना रूप छिपाये हैं - **"आत्मानं मानुषं मन्ये"**साधारण मनुष्य वेष में हैं। क्योंकि जन्मकाल में साकेत के सभी अलंकारों से युक्त श्री राम को देखकर प्रार्थना की है। "तजहु तात यह रूपा" और इसी प्रार्थना पर वे अपना दिव्यअलंकारों सहित दिव्य रूप को छोड़कर साधारण मनुष्य रूप अंगीकार किये हैं तो एक दिव्य अंगूठी कैसे रखे रहे यह अनुचित प्रतीत होता है।

किसी रामायणियों का उक्त प्रसंग में यह भी कहना है कि वह अंगूठी श्री जानकी जी की ही थी। कारण कि राम जी तो अपने सभी आभूषणों को वन जाते समय ही त्याग दिये थे। इसलिए गंगाकिनारे मल्लाह को खेवाई देने के लिए जानकी जी **"मणि मुंदरी तेही दीन्ह उतारी"** अपनी अंगुली से अंगूठी निकालकर श्री राम जी को दी थी, और वही अंगूठी अभी तक उनके पास रह गयी थी। किन्तु इसमें कोई प्रमाण नहीं मिलता है अतः यह युक्ति भी उपेक्ष्य है। प्रत्युत कन्यादान के समय उस अंगूठी को जनक जी दिये थे जो वैवाहिक विधि में है। सिन्दूर दान के समय एक भूषण पति पत्नी को देता है उस भूषण को पत्नी तबतक रखती है जबतक उसका पति जीवित रहता है। और इसी तरह एक पत्नी पति को देती है और वह उसे तबतक रखता है जबतक पत्नी जीवित रहती है।

वैवाहिक प्रसंग में जनक प्रदत्त इसी अंगूठी को गृहस्थ धर्म के अनुकूल अनिवार्य समझ कर राम जी तपस्वी वेष में भी इसे रखते थे। इसे अनिवार्य समझ कैकेयी भी चुप रह गयी क्योंकि जब उनकी पत्नी उनके साथ में है तो उस अंगूठी को त्यागने वह कैसे कहे? कारण यह कि गृहस्थ श्री राम जी का यह चौदह वर्ष का वनवास कृत्रिम था - **"चौदह वरष विशेष उदासी"** इस चौपाई का रजोगुणी सभी सुखों को वनवास की अवधि पर्यन्त त्याग में तात्पर्य है, स्त्री जीवित के चिह्न त्याग में नहीं, अतः वह अंगूठी कैकेयी नहीं रखवायी है। सुन्दर काण्ड की सुन्दरता में उक्त अंगूठी का भी परम आधार है। क्योंकि इसके निर्माण में जनक जी का परम प्रेम, राम नाम का अंकन, सुदर्शन यन्त्र मन्त्र का गठन इत्यादि सम्मिलित है। इसी अंगूठी के द्वारा सीता को हनुमान में विश्वास तथा शोक दूर हुआ था।

मानस प्रसंग 17।

।।श्रीमतेरामानुजाय नमः।।

शिव द्रोही मम दास कहावा।सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा।लं. 1।4।" देव पूजन का दो हेतु होता है। एक लौकिक सुख समृद्धि की प्राप्ति, दूसरा पारलौकिक कल्याण (मोक्ष) या अन्यान्य ब्रह्मा रुद्र वरुणादि लोक की प्राप्ति। इस लोक में लौकिक सुख प्राप्तार्थ पारिवारिक गृहस्थ विवाहादि यज्ञों में देवता, ग्रह, योगिनी, पितृ आदि के पूजन के साथ ढ़ोल ढ़ाक आदि का भी पूजन किया करते हैं। इस प्रसंग में महादेव की भी पूजा होती है और होनी चाहिए। पारलौकिक सुख प्राप्त्यर्थ पूजकगण पूज्य तथा उपास्यदेवों के लोक प्राप्त करने के लिए उन उन देवताओं की पूजा किया करते हैं। किन्तु वह पूजा तभी सार्थक होती है यदि उसमें अनन्यता अनुस्यूत हो।

अन्यथा वह देवों के साथ साथ उपासना करने से उपासकों को कोई भी लोक नहीं मिलता। इसलिए मन्त्रोपदेशक कोई एक ही मन्त्र का उपदेश किया करते हैं, चाहे जिसमें प्रेम भक्ति हो, एक ही में होना अच्छा होता है। जैसे ध्रुव प्रह्लाद घण्टाकर्ण आदि किये थे। "एको देवः शिवः केशवो वा" रह जाता है सोचने का विषय यह कि किस देव की पूजा भक्ति द्वारा अक्षय सुख (मोक्ष) मिलता है जो कि ब्रह्मा रुद्रादि लोक तथा स्वर्ग के सुख मिलने पर सबों को वहाँ से पतन होता ही है। यथा **"आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।**गी. 8।16।**" "क्षीणे पुण्ये मर्त्य लोकं विशन्ति**।गी. 9।21।" इसलिए - **"ब्रह्माणं शितिकण्ठश्च ये चान्ये देवताः स्मृताः।प्रतिबुद्धाः न सेवन्ते यस्मात् परिमितं फलम्।"** उत्तम बुद्धिवाले मनुष्य ब्रह्मा रुद्रादि लोकों के सुख को परिमित समझ कर उन उन लोकों के अधिनायकों को नहीं भेजते हैं। और यदि इन सब विषयों के बारे में नहीं सोच विचार किया गया तो देवदुर्लभ मनुष्य शरीर ही निरर्थक हो जायेगा। अतः उक्त विषय की गवेषणा में शास्त्र तथा सर्वमान्य ऋषि महर्षियों के सिद्धान्तों को ढूढ़ना चाहिए और उन्हें ढूढ़ने पर एक नारायण ही कल्याण कारक उपास्यदेव मिलते हैं उन्हीं की उपासना से मोक्ष प्राप्त होता है।

वासुदेवं परित्यज्य यो अन्यं देवमुपासते। तृषितो जाह्नवी तीरे कूपं खनति दुर्मतिः।।
अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः। तस्याहं सुलभः पार्थ नित्य मुक्तस्य योगिनः।गी. 8।14।
नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।गी.11।53।
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।गी. 9।22।
मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढाम्।भा. 3।25।22।
विसृज्य सर्वानन्यांश्च मामेवं विश्वतोमुखम्।भजन्त्यनन्यया भक्त्या तान्मृत्योरतिपारये।भा. 3।25।40।"

इस प्रकार सर्वत्र भगवान् नारायण के उपासना द्वारा ही भगवत्लोक प्राप्त होता है और यही अक्षय सुख है। क्योंकि - "**यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम**।गी 15।6।" जिस लोक में जाकर पुनः पतन नहीं होता है वही परमात्मा का अक्षय सुखप्रद स्थान है। इसीलिए मुमुक्षु श्रीवैष्णव लोग सभी देवों को छोड़कर एक नारायण की ही अनन्य उपासना किया करते हैं।

ऐसे अनन्योपासक श्रीवैष्णवों को कुछ लोग "**शिवद्रोही मम दास कहावा**" के अर्थ करते हुए द्रोही बताया करते हैं, माने महादेव से द्रोह के कारण ही श्रीवैष्णव उनको नहीं पूजते हैं। किन्तु वो तो सचमुच द्रोह शब्द का अर्थ नहीं जानते। द्रोह तो वैर शत्रुता को कहते हैं - जैसे जमदग्नि का सहस्रार्जुन मस्तक काट लिया, तो उस वैर को साधने के लिए परशुराम जी ने इक्कीस बार इस पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन बना डाला। इस कारण परशुराम क्षत्रिय कुलद्रोही कहाये। "**विश्व विदित क्षत्रिय कुल द्रोही**।बा.271।3।" इसी प्रकार सीता पर आघात करने के कारण जयन्त द्रोही कहाया "**कीन्ह मोह वस द्रोह यद्यपि तेहि कर वध उचित**।अर. 2।0।"

मुनियों के घातक राक्षसों को द्रोही कहा गया है - "**जेहि प्रकार मारौ मुनि द्रोही**। अर. 12।2।" इन उदाहरणों द्वारा द्रोह शब्द का अर्थ वैर होता है। किन्तु महादेव और वैष्णवों में इस प्रकार का कोई हेतु नहीं है जिसके द्वारा दोनों में वैर सिद्ध हो सकता है। हाँ, इन सभी सहेतुक वैरों से पृथक एक स्वभाविक वैर भी होता है जिसको ज्योतिष शास्त्र गिनाया है। "**गोव्याघ्रं गजसिहं श्वमहिषी**" इत्यादि - किन्तु इसमें भी श्रीवैष्णव और महादेव नहीं आये तो इन दोनों में स्वाभाविक वैर भी नहीं सिद्ध होता है। तो कैसे श्रीवैष्णव महादेव के द्रोही हुए ?

अतः कहने वालों का कथन शतशः निर्मूल है। **हाँ, श्रीवैष्णव शास्त्रानुकूल विष्णु के अनन्य उपासक होने से महादेव को नहीं पूजते, यही कारण लेकर यदि उनको द्रोही कहनेवाले द्रोही कहते हैं तो वे पाप भागी बनेंगे।**

महादेव जी के भी इष्टदेव श्रीविष्णु ही हैं। इसलिए भागवत महादेव में "**वैष्णवानां यथा शम्भुः**।भा. 12।13।16।" कहा गया है। तो हरिभक्त महादेव हरि के अनन्य उपासक को द्रोही कैसे समझेंगे ? वल्कि अपने इष्टदेव के भक्त के प्रति प्रसन्न ही होंगे। भगवद् भक्ति के प्रभाव से भगवद् भक्तों के प्रति सर्वदेव ही नहीं विश्वमात्र प्रसन्न होता है।

"कुर्वन्ति शान्तिं विवुधाःप्रहृष्टाः क्षेमं प्रकुर्वन्तिपिता महाद्याः। स्वस्ति प्रयच्छन्ति मुनीन्द्रमुख्याः गोविन्दभक्तिं वहतां नराणाम्।।
शुभग्रहाः भूतपिशाचयुक्ताः ब्रह्मादयो देवगणाः प्रसन्नाः। लक्ष्मीस्थिरा तिष्ठति मन्दिरे च गोविन्द भक्तिं वहतां नराणाम्।।"

रामही भजहि तात शिवधाता।नर पामर कर केतिक बाता।उ. 105।2।

मन वच कर्म राम पद सेवक। सपनेहुँ आन भरोस न देवक।अर.9।1।

तुम्हहीं छाड़ि गति दूसरी नाहीं। राम वसहुँ तिनके मन माहि।अयो. 129।3।

कर्म वचन मन राउर चेरा।राम करहुँ तिनके उर डेरा।अयो. 130।4।

श्रीरघुवीरप्रताप ते सिन्धु तरे पाषाण ते मतिमन्द जे राम तजि भजहि जाई प्रभु आन।लं. 3।

लोचन चातक जिन कर राखे ।रहहिं सदा जलधर अभिलाषे।अयो. 127।3।

चातक रटनि घटे घटि जाई।बढ़े राम पद प्रीति भलाई।अयो. 204।2। इन सभी चौपाइयों द्वारा भगवान् की अनन्य भक्ति ही से कल्याण बताया गया है। भक्तों को चातक से उदाहरण भी दिया गया है। याने -

"चातक सुतहि सिखावता आन नीर जनि लेहु। हमरे कुल की रीति यह एक स्वाति से नेहु।।

गंगा यमुना सिन्धु जल सबै सदा भरपूर।तुलसी चातक के मते बिन स्वाति सब धूर।।

रटत रटत रसना लटी तृषा सुखा गे गात। तुलसी चातक भक्त को उपमा देत लजात।दोहावली 280।"

इन सबों से यह सिद्ध होता है कि आत्मकल्याण के लिए केवल अनन्य भाव से की गयी भगवान् की भक्ति ही सर्वोत्तम साधन है।

रुद्रभक्त हिरण्यकशिपु अपने पुत्र प्रह्लाद को राम की अनन्योपासना से दूर रखने का सतत प्रयास करता रहा, परञ्च प्रह्लाद मरना स्वीकार किया लेकिन अनन्य भक्ति से विमुख होना नहीं, तो प्रह्लाद शिवद्रोही नहीं कहाये। अथवा अनन्य राम भक्ति उपासना के पथप्रदर्शक महर्षि वाल्मीकि व्यासादि शिवद्रोही नहीं कहाये तो एक श्रीवैष्णव क्यों शिवद्रोही कहें जायें ?कोई भी विष्णुभक्त श्री वैष्णव, जलन्धर के समान शिव जी से नहीं लड़ा, तथा न कहीं शिवमूर्ति को भंग किया, जिसका साक्षी इतिहास है। बल्कि रुद्र या रुद्रगण भगवद्भक्तों के ऊपर आघात किये हैं।-

बाणार्थे भगवान रूद्रः ससुतैः प्रमथैर्वृतः।आरूह्य नन्दिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः।भा. 10।63।6।

शंकरानुचरान्शौरिः भूतैः प्रमथगुह्यकान्। प्रेतमातृपिशाचाँश्च वैतालान् सविनायकान्।10।63।10।

एक बार शिवभक्त बाणासुर की कन्या ऊषा ने भगवान् श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध को सोये हुए में ही चित्रलेखा द्वारा चुरवाकर मँगवाया था। नारद जी के द्वारा खबर मिलने पर भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें लाने गये। इसी प्रसंग में बाणासुर के साथ युद्ध की ठान ठन गयी, तो उसकी सहायता में शिव जी अपने गणों के साथ बलराम और

श्रीकृष्ण से घोर संग्राम किये हैं। श्रीकृष्ण को मारने के लिए शिव जी ने अमोघ ब्रह्मास्त्र तथा वायु बाण का प्रयोग किया - **"ब्रह्मास्त्रस्य तु ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम्।** भा 10।63।13।" किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मास्त्र को ब्रह्मास्त्र द्वारा तथा वायु बाण को पार्वत बाण द्वारा निवारण कर देते हैं। यहाँ यह सोचना चाहिए कि किसका अत्याचार हुआ, शिव शैव का, या विष्णु वैष्णव का।

दण्डकारण्य में श्री राम जी हड्डियों की ढेर देख - **"अस्थि समूह देख रघुराया।पूछा मुनिन्ह लागी अति दाया।** अर. 8।3।" मुनियों से पूछते हैं कि यह हड्डियों की ढ़ेर कैसी ? उत्तर मिला **"निश्चर सकल मुनिन्ह कहँ खाये। सुनि रघुनाथ नयन जल छाये।** अर. 8।4।" राक्षसों द्वारा खाये गये मुनियों की हड्डियाँ हैं। ये सब राक्षस शिवभक्त थे, यहाँ मुनियों का अत्याचार है या शिवभक्तों का ?

परम भगवद्भक्त प्रह्लाद दैत्य पुत्रों को हिंसादि आसुरी वृत्ति त्यागने का उपदेश दिया करते थे, इस पर शिवभक्त हिरण्यकशिपु उन्हें मारने के लिए कौन सा उपाय नहीं किया? यह कथा प्रसिद्ध है। तो इसमें प्रह्लाद का अपराध है या हिरण्यकशिपु का अत्याचार। ऐसे अनेकों उदाहरण सद्ग्रन्थों में भरे पड़े हैं जिससे ज्ञात होता है कि शिवभक्त राक्षसादि अपने स्वभाववश हमेशा हरिभक्तों को सताते आये हैं। और आज भी श्रीवैष्णवों को शिवद्रोही का झूठा कलंक लगाकर पीड़ा पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं। और वे लोग चुपचाप उसे सहन करते हैं फिर भी दोष उन्हीं के गले मढ़े जाता है। यहाँ पर यह लोकोक्ति ठीक चरितार्थ होती है **"बैल न कूदे कूदे तंगी।"**

श्री वैष्णवों को शिवद्रोही कहने वाले केवल एक ईर्ष्यावश ऐसा कहते हैं।कारण कि भगवद्भक्त सत्संग के प्रसंग में जिज्ञासु व्यक्तियों को शास्त्रानुकूल अनन्य भगवद्भक्ति करने के लिए बताया करते हैं जो सब सदगन्थों को मान्य है। ब्रह्म संहिता में ब्रह्मा शिव या शिव निर्मित शास्त्रों के सम्बन्ध में कहा है -

"सचैकादशधात्मानं व्यतनोद् भीमदर्शनः। रुद्रकल्पान्तकर्तायं तामसस्तामसप्रियः।।

पाषण्डशास्त्रं व्यतनोन्मद्यमांसप्रशंसकम्।शैवं शाक्तं पाशुपतं डमरोड्डीन शावरम्।।

नानादेव प्रधानञ्च मतो वैमुख्यकारणम्।" अर्थात् शिव ही अपने को एकादश रूपों में तामस मद्य मांसादि का प्रशसंक शैव शाक्त पाशुपतादि शास्त्रों को बनाया है जो तामस प्रकृति वालों को मान्य है, न कि सात्विक प्रकृति वालों को। शिव जी ब्रह्म संहिता में तो स्वयं कहते हैं कि **"नैवं विधोऽहमाराध्यः संसारन्मोक्षमिच्छता"** मुक्ति चाहने वालों के लिए मैं इस प्रकार आराधन करने योग्य नहीं हूँ। शिव जी भद्रसेन राजा से कहते हैं -

"नाहं कैवल्यदो राजन् परतन्त्र स्वभावतः। स्वतन्त्र सर्व भूतात्मा परमात्मा रमापतिः।।

त्वञ्चाहञ्च सुराः सर्वे तनवः परमात्मनः। तमात्मत्वेन सर्वेषां विजिज्ञास विमुक्तये।।

स्व स्वरूपस्य सम्प्राप्तिं मुक्तिमाहुः मनीषिणः।तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन मएनद।।"

हे भद्रसेन ! मैं मुक्ति देने वाला नहीं हूँ क्योंकि परमात्मा का परतन्त्र हूँ।स्वतन्त्र सर्वात्मा विष्णु हैं और हम तुम सबों की आत्मा हैं। मुक्ति के लिए उन्हीं की शरणागति करनी चाहिए। यही उपदेश शिव जी घण्टाकर्ण को दिये थे जो हरिवंश भविष्य पर्व में लिखा है।हारीत संहिता में भी यही मिलता है - **"रुद्रार्चनं त्रिपुण्ड्रस्य धारणं यत्र दृश्यते। तत् शूद्राणांविधिः प्रोक्तो न द्विजानां कथंचना।।"** शिव की पूजा तथा त्रिपुण्ड्र का धारण शूद्रों के लिए है न कि द्विजातियों के लिए। **"अनर्च्या ब्रह्मरुद्राद्याः रजस्तमविमिश्रिताः।** प. पु.।" रजोगुणी तथा तमोगुणी होने के कारण ब्रह्मरुद्रादि अपूज्य हैं। **"नान्यं देवं तु वीक्षेत ब्राह्मणों न च पूजयेत। नान्यं प्रसादं भुञ्जीत नान्यस्यायतनं**

विशेत्।।"भगवान् को छोड़ अन्य देवों को पूजना प्रसाद खाना तो दूर रहा उनके मन्दिर में प्रवेश तथा दर्शन करना भी ब्राह्मण के लिए मना है। क्योंकि - **"निर्माल्यं शंकरादीनां स चाण्डालो भवेद्ध्रुवम्। कल्पकोटि सहस्राणि पच्यते नरकाग्नि ना।।**"अर्थात् भगवान् को छोड़ अन्य देवों के प्रसाद को जो खाता है वह करोड़ो कल्प नरक में वास करता है और अन्त में चाण्डाल होता है। अन्य देवों की सेवा पूजादि को व्यासादि महर्षियों ने ऐसे कठोर शब्दों से निषेध किया है तो हम सबों को बचना अनिवार्य है। उन्हीं सब विषयों को लेकर शिवभक्त लोग श्री वैष्णवों को शिवद्रोही कहा करते हैं, किन्तु उन्हें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि **"सेवक बैर बैर अधिकाई।अयो. 218।1।"** याने राम जी अपने सेवक के बैरी को अपना बैरी मानते हैं, और उसका फल यह है कि - **"जो अपराध भक्त कर करई। राम रोष पावक सो जरई।अयो. 217।3।"** जैसे भक्त अम्बरीष के प्रति अपराध करनेवाले दुर्वासा को कहीं भी शरण नहीं मिला। दण्डकारण्य वासी ऋषियों के प्रति अपराध करने वाले राक्षसों का सर्वस्व नाश हुआ। इसी प्रकार हरिभक्तों के प्रति अपराध करनेवालों का नाश होता आया है। अतः श्री वैष्णवों को शिवद्रोही का अपराध लगाने वाले शिवभक्तों को भगवान् की क्रोधाग्नि से बचना चाहिए। अन्यथा - **"राखि को सकै राम कर द्रोही।अर. 1।3।"** याने उन्हें कहीं शरण नहीं मिलेगा। अतः अपने कल्याण के लिए यह विषय अवश्य विचारणीय है।

मानस प्रसंग 18।

"जौ जनतेउं बन बन्धु बिछोहू।पिता वचन मनतेउ नहीं ओहू।लं. 60।3।" यह चौपाई लंका काण्ड की है। रावण के साथ युद्ध में लक्ष्मण को मूर्छित देखकर श्री राम जी कहते हैं यदि मैं जानता कि लड़ाई में लखन की मृत्यु होगी तो पिता की उस वनवास आज्ञा को नहीं मानता। किन्तु यहाँ प्रश्न होता है कि श्री राम तो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं और यही यदि पिता की आज्ञा को न मानेंगे तो स्वयं इन्हें आज्ञा उल्लंघन का दोष लगेगा। अपयशी बनेंगे, लोकसंग्रह बिगड़ेगा इत्यादि। उत्तम पुत्र को समयानुकूल स्वतः विचार से ही कार्य करना बताया गया है -

"उत्तमनिश्चिन्तितं कुर्यात्प्रोक्तकारी तु मध्यमः। अधमोऽश्रद्धया कुर्यात् अकर्तोच्चरितं पितुः।भा.9।18।44।" श्री राम जी तो माता-पिता की आज्ञारत सुने जाते हैं - **"तुम पितु मातु वचन रत रहहु।अयो.42।2।"** और यही चाहिए भी। ऐसा ही सर्वत्र विधान है- **"अनुचित उचित विचार तजि जो पालै पितु बैन।ते भाजन सुख सुयश के बसहि अमरपति अयन।अयो. 174।"** पिता माता की आज्ञा पालन करना ऐसा श्रेयस्कर है कि उसमें उचित अनुचित का विचार भी छोड़ देना बताया गया है। इसीलिये - **"पितहि बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राणा। करहु तात पितु वचन प्रमाणा।अयो 173।3।"** श्री राम जी स्वयं भरत जी को पिता की आज्ञा (राज्य करना) पालन करने के लिए प्रेरित करते हैं और एक ओर उन्हीं की आज्ञा का तिरस्कार करने के लिए कहते हैं यह क्यों ? यह प्रश्न है।

उत्तर- श्री राम जी को लखन जी में अत्यन्त प्रेम है, उत्कट भातृ भाव है। अतः इनको मूर्छित देखकर अत्यन्त दुःखी हो पिता की आज्ञापालन से होनेवाले सुख सुयश को अति तुच्छ तथा लखन जी को जीवित रहने से होने वाले सुख को श्रेष्ठ समझकर पिता की वनवसाज्ञा को ठुकरा देना सोचते हैं, क्योंकि वही इस विषम परिस्थिति का जनक है। यह इनमें उचित भातृव्यवहार है। **"सीय कि पिय संग परिहरहिं लखन ....जियहिं बिनु राम।अयो. 49।"** यदि राम जी के बिना लक्ष्मण और सीता दो में से एक भी नहीं जीवित रह सकते हैं, इसीलिए इन तत्वों को जंगल

आना पड़ा है और इसमें कारण दशरथ की आज्ञा ही है और भी **"यह अपयश सहतेउ जग माहीं**।लं.60।6।"श्री राम जी कहते हैं कि पिता की आज्ञा उल्लघंन से होने वाले अपयश को सह लेता, किन्तु आज इनकी मृत्यु असह्य हो रही है। श्री राम जी को वनवास देना दशरथ जी को अनुचित ही नहीं कुकृत्य समझ कर लक्ष्मण तो यों कहे कि - "**अहं हनिष्ये पितरं वृद्धं कामवशं गतम्**।वा. रा. अयो. 21।19।" याने वृद्धावस्था में कामवश कैकेयी के वशीभूत पिता दशरथ को मैं मार डालूंगा। इसको श्री राम जी अनुचित कह लक्ष्मण को वर्जन किये हैं।

मुग्धावस्था का वचन अमान्य होता है, अतः दशरथ को मुग्धावस्था में ही कैकेयी को वरदान तथा वनवास देना भी अमान्य समझ कर श्री राम जी भी उस आज्ञा को उल्लंघन करने में दोषी नहीं होंगे। इसी तरह इन अमान्य वचनों को भरत भी माता, मन्त्री, वशिष्ठादि को मानने के लिए बाध्य करने पर भी ठुकरा दिये हैं तथा वशिष्ठ जी की निन्दा भी किये हैं- "**विललाप सभा मध्ये जगर्हे च पुरोहितम्**।वा रा अयो 82।10।**राज्यञ्च अहञ्च रामस्य**।वा. रा. अयो. 82।12।" यह राज्य तथा मैं श्री राम जी का हूँ। पिता मुझे राज्य मोहावस्था में दिये हैं अतः उनका कहना सर्वथा अमान्य है - "**जिन कृत महामोह मदपाना।तिनके बचन करिये नहीं काना**।बा. 114।4।"

अथवा श्री राम जी यह सोचते हैं कि हम सबों को वन में आते समय दशरथ जी सुमन्त को कहे थे कि हे सुमन्त! इन सबों को वन देखाकर लौटा ले आइयो, यदि ऐसा मैं जानता कि इस यात्रा में लक्ष्मण जी की मृत्यु हो जायेगी तो उनकी उस चार दिन की भी आज्ञा को नहीं मानते।

अथवा मेरा वनवास तो कैकेयी दशरथ जी से वरदान में मांगी, लक्ष्मण को विना कारण वन आये, तथा इनकी मृत्यु हुई। यदि यह बात मुझको उस समय सूझती कि साथ आने का लखन के आग्रह "**नाथ दास मैं स्वामीनाथ दास मैं स्वामी तुम तजहु तो कहाँ बसाय**।अयो. 71।" याने आप मुझे छोड़ देंगे तो कहाँ शरण मिलेगा इस वचन को मैं नहीं मानता लखन को वन नहीं आने देता।

अथवा वन आते समय सीता के वन आने के आग्रह को नहीं स्वीकार करता तो ये सब अनर्थ ही नहीं होता।सभी अनर्थों का कारण तो सीता ही हुई क्यों कि उसी कथनी मान मैं मृग लाने गया, पीछे अकेली सीता चुराई गयी, युद्ध आ उमड़ा, यदि सीता साथ नहीं आती तो ये सब कुछ नहीं होता।

अथवा जानकी के मृग लाने की बात - "**सुनहु देव रघुवीर कृपाला। येही मृग कर अति सुन्दर छाला।। सत्यसन्ध प्रभु बध कर येही।आनहु चर्म कहति बैदेही**।अर.26।3।"- को नहीं मानता तो ये सब अनर्थ नहीं होता। जानकी का मृग लाने की बात कहना लोभाभिभूत अवस्था की है, अतः अमान्य था। किन्तु मैं नहीं समझ, उस कथनी को माना तो अनर्थ हुआ।

किसी रामायणी का यह भी कहना है श्री राम जी की वाल्यावस्था में मेघनाद काक बनकर उनकी बल बुद्धि की परीक्षा लेने गया था तो राम जी पकड़ कर उसे बाँध दिये थे। किन्तु दशरथ छोड़ा दिये थे और वही मेघनाद आज लक्ष्मण को मारने वाला हुआ है।अतः श्री राम जी यह सोचते हैं कि यदि मैं उस समय पिता की उक्त आज्ञा को नहीं मानता याने मेघनाद को नहीं छोड़ता तो आज इनकी यह दशा नहीं होती। किन्तु यह कल्पनामात्र है, सद्ग्रन्थों में इसका आधार कुछ नहीं मिलता। यहाँ केवल इस प्रसंग में भाई भाई का परस्पर प्रेम की वाहुल्यता ही पायी जाती है, इसके सामने दशरथ के वचनों का कोई मूल्य नहीं। क्योंकि लक्ष्मण जी भाई श्री

राम जी के लिए "**देह गेह सब तृण सम तोड़े**।अयो. 69।3।" देहादिक सर्वस्व को तृण समान माना है, अपनी माता पिता बन्धु सभी परिवारों को छोड़ साथ चले और यह भी कहे कि "**अहं सर्वं करिष्यामी जाग्रतः स्वपतश्च ते**।वा रा अयो. 31।27।"आपकी सभी अवस्थाओं में मैं सब कुछ किया करूँगा। "**पिता च मम राघवः**।।" लक्ष्मण जी राम जी को पितृस्थानीय मानते हैं। सुमित्रा की भी यही शिक्षा थी - "**तात तुम्हार मातु वैदेही।पिता राम सब भाँति सनेही**।अयो. 73।1।" इसी स्नेह के वशीभूत होकर श्रीराम जी पिता वचन को छोड़ना चाहते हैं किन्तु लखन का संयोग नहीं छोड़ना चाहते हैं। यदि राम जी इतना भी त्याग नहीं करते तो इनमें संकीर्णता पायी जाती क्योंकि इनकी प्रतिज्ञा है- "**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां तथैव भजाम्यहम्**।गी. 4।11।" याने जो जितना हम में प्रेम करता है उतना ही मैं भी उससे करता हूँ।

"**देखतराम लखन कर जोरे।देह गेह सब तृण सम तोरे**।अयो. 69।3।" लखन जी सभी परिवारों को तृण के समान तुच्छ समझ कर श्री राम जी के साथ हो गये हैं, यही अमूल्य प्रेम सार वस्तु है। ऐसे भाई नहीं मिलते - "**जगत न मिलही सहोदर भ्राता**" इसमें 'उदर'शव्द हृदय का उपलक्षक है। अर्थात् शरीर दोनों का दो होते हुए भी हृदय एक ही (समान) है। इसलिये ऐसे भाई के लिए पिता वचन का छोड़ना उचित ही है।

अथवा एक ओर दशरथ जी हैं और दूसरे ओर लक्ष्मण। इन दोनों में प्रवल पक्ष लक्ष्मण का ही है। क्योंकि दशरथ तो केवल इस प्राकृत लोक के एक बार के ही सम्बन्धी हैं, किन्तु लखन तो इस प्राकृत और दिव्यलोक में भी साथ ही रहने वाले हैं - "**प्रथमोऽनन्तरूपश्च द्वितीयो लक्ष्मणस्तथा। तृतीयो बलरामश्च कलौ रामानुजो मुनिः**।।" लक्ष्मण प्रथम तो अनन्त रूप से, द्वितीय लक्ष्मण रूप से, तृतीय बलराम रूप से और चौथे रामानुज रूप से भगवान् के साथ रहते हैं। दिव्यलोक में -

"**निवासशय्यासनपादुकांशुकोपधानवर्षातपवारणादिभिः।शरीरभेदैस्तव शेषतां गतैर्यथोचितं शेष इतीर्यते जनैः**।स्तोत्र रत्न40।"शेष जी (लक्ष्मण) अनेक रूप होकर भगवान् की सेवा सर्वदा किया करते हैं। इसीलिये इनके सामने दशरथ जी का सम्बन्ध तुच्छ पड़ जाता है, अतः लखन जी के लिए दशरथ जी का वचन न मानना कोई अनुचित नहीं।

दशरथ जी प्रथम तो कौशल्या से विवाह किया है। पश्चात् जब कैकेयी के रूप-गुण, कला-कौशल की प्रशंसा सुने, तो उतावला हो, तथा इसीसे उत्पन्न पुत्र राज्याधिकारी होगा, ऐसी प्रतिज्ञावद्ध हो इससे विवाह किया। किन्तु जब रामचन्द्र युवा हुए तो इनका शील स्वाभावादि के वशीभूत हो दशरथ जी इन्हीं को राज्य देने की सारी रचना रच दी, यह तो इनकी अनुचित अवसरवादिता है। पुनः जब वे कैकेयी के सामने पड़ते हैं तो शीघ्र पलट जाते और उसी के अनुकूल कहते हैं - "**प्रिया प्राण सुत सर्वस तोरा**।अयो. 25।2।" हे प्रिये! मेरा प्राण तथा पुत्रादि सर्वस्व तुम्हारे ही अधीन है। और - "**भामिनी राम शपथ शत मोही**।अयो. 25।3।" ऐसे शपथ करते हैं। "**प्राण जाहिं वरु वचन न जाई**।अयो. 27।3।" यह प्रतिज्ञा भी करते हैं। यहाँ पर कैकेयीपुत्र को राज्य देना कहकर राम जी को राज्य देना चाहते हैं, तो झूठे भी बनते हैं। ये सब क्यों हुआ, तो "**देखहु काम प्रताप बड़ाई**।अयो. 24।2।"कामातुर दशरथ कैकेयी के वशीभूत हो भरत को राज्य तथा राम जी को जंगल, ये दोनों वरदान दिये हैं। अतः इसको राम जी अमान्य समझ ठुकरा देते हैं।

"**देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः। तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः**।वा.रा. युद्ध 101।15।"

"सुत वित नारी भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारम्बारा।।
अस विचारी जिय जागहु ताता। जगत न मिलही सहोदर भ्राता।लं. 60।4।" श्री लखन जी के प्रति श्री राम जी का परम प्रेम प्रदर्शक ये चौपाइयाँ हैं। श्री राम जी लखन जी को प्राण से भी प्रिय समझते हैं - **'प्राणैः प्रियतरम् मम।101।4।' 'प्रियं प्राणं बहिश्चरम्।।101।9।' 'इहैव मरणं श्रेयो न तु बन्धुविगर्हणम्।**वा.रा. युद्ध 101।19।"और ये लखन जी को मूर्छित देखकर कहते हैं कि मुझे मर जाना अच्छा है किन्तु भाई लखन जी के बिना जीना अच्छा नहीं है। उक्त चौपाई में सहोदर भ्राता के सम्बन्ध में यह प्रश्न होता है कि श्री राम जी के लखन जी वैमात्र भाई हैं तो वे उनको सहोदर भाई क्यों कहे? तथा एक माता से उत्पन्न होने वाले सहोदर भाई संसार में मिला ही करते हैं तो फिर जगत न मिलही सहोदर भ्राता ऐसा क्यों कहते हैं?
उत्तर- महापुरुषों को जहाँ कहीं जाना होता है तो प्रथम उस स्थान (जहाँ जायेंगे) को अपने योग्य बना लेते हैं। यदि पूर्व से ही वह स्थान योग्य बना हुआ है तो कोई बात ही नहीं। यह स्थान दो तरह का होता है एक सिद्ध दूसरा कृत्रिम। **"शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।**गी. 6।41।"योगभ्रष्ट योगी लोग उत्तम कुल में जन्म लेते हैं। उत्तम क्षेत्र के सम्बन्ध में कहा गया है कि **"या वै चतुर्दशी रात्रिः गर्भास्तिष्ठति तत्र वै। सा निशा प्राकृतैर्जीवेर्न लभ्येत कदाचन।।"** याने शुद्ध सात्विक संयम नियम से रहने वाली स्त्रियों के चौदहवें दिन के गर्भ से योगी महात्मा का जन्म होता है जो अत्यन्त दुर्लभ माना गया है।

जब श्री रामचन्द्र जी अपने अंशों के सहित अवतार लेना चाहे तो पवित्र सूर्यवंश को **"वंशेरघोरनुजिघृक्षुरिहावतीर्णो दिव्यैर्बबर्पिथ तथाहि भवद्गुणौघैः"**स्वकीय दिव्यगुणों के वर्षा द्वारा और भी पूततम बना दिया जिससे भगवान् के अवतार योग्य हो गया। तथा इसी प्रकार अनादिकालिक उपासक माता पिता को भी प्राप्त किया।भगवान् श्रीरामचन्द्र कौसल्या के पवित्र हृदय को अंगीकार किया तो लखन जी सुमित्रा के सुन्दर हृदय को। शेष (लखन जी) अपना स्वरूप कभी भी नहीं भूले हैं, अतः अपना स्वरूपानुरूप सुमित्रा को अपनाया है। सुमित्रा - **"मगधस्य नृपस्थाय तनया च शुचिस्मिता।सुमित्रा नाम नाम्ना च द्वितीया तस्य भामिनी।**प.पु.उ.242।36।" श्रीविष्णुपादांकित पवित्र क्षेत्र गया निवासी राजा की पुत्री थी। **"धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपत्काल परीखिये चारी।**अर. 4।4।" किसी व्यक्ति को व्यक्तित्व की परीक्षा आपत्तिकाल में ही होती है। श्री राम जी का वनगमन काल उपस्थित है, सुमित्रा परीक्षार्थ आ डटीं, कहती हैं, हे पुत्र लक्ष्मण ! **"सृष्टःत्वं वनवासाय ...... रामे प्रमादं मा कार्षीः पुत्र भ्रातरि गच्छति।**वा रा अयो 40।5।" जैसे कौशल्या लोकरक्षार्थ राम ऐसा पुत्र उत्पन्न की है वैसे ही राम जी की रक्षार्थ मैं भी तुम्हें उत्पन्न की हूँ, अतः तुम उनकी रक्षार्थ जंगल जाओ। ।**"सुमित्रा गच्छ गच्छेति पुनर्पुनरुवाच तम्**।वा रा अयो 40।8।" और यह भी सिखाती है कि हम सभीमातापिताओं को भूलकर तन्मयतापूर्वक याने **"रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।अयोध्यां अटवीं विद्धि गच्छ तात यथा सुखम्।**वा रा अयो 40।9।"पिता स्थानीय राम को, माता स्थानीय जानकी को और अयोध्या जंगल को ही समझते हुए भगवान् की सेवा कीजियो। इसी को मानसकार भी कहते हैं **"तात तुम्हार मातु वैदेही।पिता राम सब भाँति सनेही।**अयो 73।1।" भाव यह है कि दशरथ तो एक जन्म के प्राकृत पिता हैं किन्तु राम तो अनन्तकाल के अप्राकृत पिता हैं। इन तत्वों को जानने वाली सुमित्रा

थीं, तब तो बिना किसी के कहे लखन जी को वन भेज रही हैं। **'जानि कहत बहुभाँति निहोरे'** जाने के लिए प्रेरणाकरती हैं और यह भी प्रोत्साहन देती हैं-

"सिय रघुवर सेवा शुचि हृदय हों तो जानिहौं सुत मोरे।

कीजियो इन्हें विचार निरंतर राम समीप सुकृत नहीं थोरे। गीतावली अयो. 11।" यदि तुम श्री राम जी की सेवा शुद्ध हृदय से करोगे तभी मैं जानूँगी कि तुम मेरा पुत्र हो। भगवान् की सेवा थोड़े पुण्य से नहीं मिलती यहाँ तक कि **"सुनि रन घायल लखन पड़े हैं।"** जब सुमित्रा यह सुनी है कि लखन लंका में मूर्छित पड़े हैं तो कहती हैं कि -

"स्वामी काज संग्राम सुभट सो लोहे ललकारी लड़े हैं।

सुत शोक सन्तोष सुमित्रहिं रघुपति भक्ति बरे हैं।

छिन छिन गात सुखात छिन छिन हुलसत होत हरे हैं। गीतावली लंका 13।" सुमित्रा को लखन के लिए किञ्चित शोक तो हुआ है किन्तु वीरों के साथ श्री राम जी के लिये लड़ने से संतोष एवं राम जी के लिए प्राण दे देने तक जानकर अत्यन्त खुशी भी हुई है। इसी लिए यह भी कहा गया है कि - **"पुत्रवती युवति जग सोई। रघुवर भक्ति जासु सुत होई।** अयो. 74।1।" **"राम विमुख सुतते बड़ हानि"**इसीलिए अपना स्वरूपानुरूप सुमित्रा के हृदय को लखन जी ने अपनाया है। लखन जी भगवान् के साथ रह सेवा करने के सिवाय और कुछ भी नहीं चाहते हैं।

"न देवलोकाक्रमणं नामरत्वमहं वृणे। ऐश्वर्यं चापि लोकानां कामये न त्वया विना।31।5।

कुरुष्व मामनुचरं वैधर्म्यं नेह विद्यते। कृतार्थोऽहं भविष्यामि तव चार्थः प्रकल्प्यते। वा रा अयो 31।24।" मैं आपके बिना कुछ भी नहीं चाहता हूँ। आप मुझे अपना अनुचर बनाइये, किसी प्रकार का विधर्म नहीं होगा। स्वामी होने से सेवा लेना और सेवक होने से मुझे सेवा करना यह दोनों का स्वारूपानुरूप है।

"समाचार जब लक्ष्मण पाये। व्याकुल विलखि तुरत उठी धाये।।

कंप पुलक तन नयन सनीरा।

कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीन दीन जनु जल ते काढ़े। अयो 71।1 एवं 2।"

इसी प्रकार शक्ति द्वारा मूर्छित होने के पश्चात् - **"हृदय घाउ मेरे पीर रघुवीरे।**

मोहि का बूझत पुनि पुनि जैसे पाठ अर्थ चरचा कीरे।।

शोभा सुख क्षति लाहु भूप कहे केवल कान्ति मोल हीरे। गीतावली लंका 15।"लखन जी के संचेष्टित होने पर लोगों ने पूछा कि व्यथा कैसी है तो लखन जी उत्तर देते हैं कि घाव तो मेरे शरीर में है किन्तु पीरा तो श्री राम जी को है उन्हीं से पूछो। जैसे सुग्गा केवल पाठ पढ़ता है किन्तु अर्थ तो पढ़ाने वाला जानता है। हीरा में केवल कान्ति और मूल्यमात्र है उससे शोभा या लाभ हानि तो रखने वाले ही का है। कहने का अभिप्राय यह है कि लखन जी अपने हृदय के ज्ञाता श्री राम जी को ही समझते हैं अथवा शरीर में हुए दुःख का अनुभव आत्मा ही को होता है, श्री राम जी लक्ष्मण जी के प्राण हैं। लक्ष्मण अपने हृदय को राम जी के हृदय में न्यस्त कर दिये हैं और श्री राम जी अपना हृदय लक्ष्मण के हृदय में - **"न लक्ष्मणसमो भ्राता सचिवः साम्परायिकम्।** वा. रा. लं. 49।6।" **" यदि पञ्चत्वमापन्नः सुमित्रानन्दवर्द्धनः।7।"** **"इहैव देहं त्यक्ष्यामि न हि जीवितुमुत्सहे।11।"** **"यथैव मां वने यान्तमनुयातो महाद्युतिः। अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्।17।"**श्री राम जी कहते हैं कि यदि लखन जी नहीं जीवित हुए तो मैं भी इनके साथ ही मर जाउँगा। लखन जी वन आते समय जैसे मेरे साथ आये इसी प्रकार मैं भी इनके साथ परलोक

चलूँगा। इस प्रकार लखन जी और राम जी में सतत एकता का व्यवहार, परस्पर दोनों में शरीर शरीरी का सम्बन्ध रहने के कारण हीसे श्री राम जी इनको सहोदर भाई से कहा है। इसका भाव यही है कि इनके ऐसा समान हृदय वाला भाई संसार में नहीं मिलते। अन्यत्र भी इस प्रकार के शब्द मिलते हैं। **'रामसुग्रीवयोरैक्यम्**।वा रासु. 35।53।'अर्थात् राम और सुग्रीव दो होते हुए भी जानकी के अन्वेषण में एक हृदय तथा एक विचार के हैं। **'वाल्यात्प्रभृति सुस्निग्धः**। वा रावा.18।28।'

"**बारेहिं ते निज पति हित जानी।लक्ष्मण रामचरण रति मानी**।बाल 197।2।" वाल्यावस्था से ही श्री लखनलाल श्री रामचन्द्र में प्रेम करते आये हैं। जन्म के पूर्व में भी जिस समय दशरथ जी पुत्रार्थ अपने स्त्रियों को खीर बाँट रहे थे उस समय भी लक्ष्मण का उत्पादक खीर (सुमित्रा को मिलने वाला) कौशल्या के ही हाथ में दिया गया है। इनके हाथ में पूर्व से राम जी का उत्पादक खीर था और लक्ष्मण का उत्पादक खीर भी उसी के साथ संयुक्त हुआ है। पश्चात् कौशल्या द्वारा सुमित्रा को मिला - "**अर्धभागसमन्वितः**"यह भी दोनों को समान हृदय होने में कारण हुआ है और इसी से अनुज (पीछे जन्म लेने वाला) भी हुए।

ब्रह्मा की प्रार्थना- "**विष्णोः पुत्रत्वमागच्छ कृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम्**।वा रा. बा. 15।21।"हे भगवान् ! आप चार शरीर से अवतार लीजिये और इसी के अनुकूल भगवान् अवतार भी लिया - "**ततः पद्मपलाशाक्षःकृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम्। पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपं**।वा रा.बा. 15।32।" इसके पश्चात् भगवान् अवतार लेने के लिए पितृभाव से दशरथ को देखा। इस तरह लखन जी ब्रह्मा की प्रार्थना में भी साथ हैं, अवतार के समय भगवान् के संकल्प में भी साथ और अवतार के पश्चात् भी साथ हैं। यहाँ साथी बोधक सह शब्द ऊपर की चौपाई में आया है। कुछ काल के लिए लखन जी सुमित्रा के उदर में निवास किया है, अतः उदर शब्द आया है और पुनः अवतार लेकर मिले हैं, अतः मिलही शब्द आया है। भाई होने से भ्राता शब्द आया है। इस तरह के भाई नहीं मिलते इसीलिए निषेधक न शब्द आया है।

"**जगत न मिलहीं सहोदर भ्राता**" इसका अन्वय ऐसा समझना चाहिए - "**सह उदर भ्राता जगत न मिलहीं** " याने एक समान अन्तःकरण वाले भाई अन्य किसी के उदर में जाकर पुनः आ मिले ऐसा भाई संसार में नहीं मिलते। मिले तो श्री राम जी को लखन ही। इसी लिए - "**तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्रातासहोदरः**" वह स्थान कभी भी न देखता जहाँ सहोदर भाई मिलें ऐसा कहते हैं।

मानस प्रसंग 19।

"**सुत वित नारी ईषणा तीनी।केहि के मति इन्ह कृत न मलीनी**।उ. 70।3।"

"**सुख और दुःख।**" "**संग्रह और त्याग।**" "**प्रतिग्रहो हि दुःखाय यद्यत्प्रियतमं नृणाम्। अनन्तं सुखमाप्नोति तद्विद्वान्यस्त्वकिञ्चनः**। भा. 11।9।1।"प्रतिग्रह को संग्रह करना याने लोक प्रियतम वस्तु को संग्रहकरना दुःख का हेतु है। और गृहीत वस्तुओं को परित्याग करना सुख का हेतु है। जैसे नारद, शुकदेव, भरत आदि थे।सामान्य व्यक्ति धन को सबसे प्रिय समझते हैं किन्तु उसमें भगवान् पन्द्रह दोष बताते हुए यह कहे कि -

"**भिद्यन्ते भ्रातरोदारः पितरः सुहृदस्तथा**।भा. 11।23।20।" धन का प्रेम स्त्री, भाई, पिता और सभी प्रेमी जनों में भेद कराकर बैरी बना देता है। "**तस्मादनर्थमर्थाख्य श्रेयाऽर्थी दूरस्त्यजेत्**।भा. 11।23।19।" अर्थात् कल्याणार्थी धन को दूर

से ही छोड़ दे। बलवान् जरासन्ध देश के सभी धनियों का धन छीनकर उन सबों को जेल में दे दिया था। पाण्डव तथा कौरवों में धन के ही कारण महायुद्ध हुआ जिससे देश के सभी शूर वीरों का संहार हुआ। भीष्म ऐसे महापुरुष को भी धनियों के संसर्ग से भ्रष्ट होना पड़ा, ये सभी दोष धन में ही रहते हैं।

"**न देयं न उपभोग्यं च लुब्धैः दुःखसंचितम्।भुङ्क्ते तदपि तत् च अन्यो मधुहा इव अर्थ वित् मधु।।**
सुखदुःखः उपार्जितैः वित्तैः आशासानां गृह आशीषः।मधुहा इव अग्रतो भुङ्क्ते यतिः वै गृहमेधिनाम्।भा. 11।8।15, 16।"
कृपण गृहस्थी या संन्यास कष्टपूर्वक धनसंग्रह किया, किन्तु न तो स्वयं खाया और न किसी को दिया। उसकी दशा मधु अपहृत होने पर मधुमक्खी के सदृश हो जाती है।

धन हृदय का आकर्षक है। इसको अर्जन में चाहे जितना भी कष्ट हो, जो भी कुकर्म करना पड़े मनुष्य करता है और मरणपर्यन्त तो उसमें मन गड़ाये रहता ही है, मरणपश्चात् भी अर्जित संचित धन को सर्प आदि बनकर रक्षा किया करता है। क्योंकि यह अत्यन्त प्रिय है। इससे जब वियोग होता है तो सांसारिक व्यक्ति पुत्रनाश से भी अधिक दुःख अनुभव करते हैं। इसी विषय को भरद्वाज भरत जी से कहे हैं कि -"**तुम कह भरत कलंक यह हम सब कर उपदेश।**अयो. 208।" ऐ भरत ! तुम्हारे लिए तो यह राज्य कलंक हई है किन्तु हम सबों के लिए यह उपदेश है। इसी राज्य सम्पत्ति के लिए दशरथ का मरण, रामचन्द्र को वनवास इत्यादि अनर्थ हुआ है और की तो बात ही क्या। इस तरह लोक तथा परलोक का बाधक समझ कर ज्ञानी जन इसको छोड़ भागते हैं और यह भी लोगों को उपदेश देते हैं -

"**धनञ्च भूमौ पशवश्च गोष्ठे भार्या गृहेऽन्यः स्वजनश्मशाने। देहश्चितायां परलोकमार्गे कर्मानुगो गच्छति जी व एकः।**"
परलोक के साथी धन परिवारादि कोई भी नहीं, किन्तु कर्मानुगामी केवल एक जीव ही परलोक जाता है अर्थात् कर्म अपने अनुकूल जीव को घसीट कर ले जाता है। यह कर्म दो प्रकार का होता है, शास्त्रानुकूल जिसको धर्म कहते हैं और शास्त्रप्रतिकूल अधर्म। भगवत्प्राप्ति में दोनों ही बाधक होते हैं। न तो संचित पुण्य के द्वारा ब्रह्मलोकादि मिलता है और पुण्य समाप्त होने पर यहाँ आकर अनेक योनियों में घूमना पड़ता है। पाप का फल तो स्पष्ट निकृष्ट से निकृष्ट योनियों में जाना पड़ता है, यह क्रम सतत चलता रहता है। "**एवं संसृति चक्रस्थे भ्रम्यमाणे स्वकर्मभिः। जीवे दुःखाकुले विष्णुः कृपा काप्युप जायते।।**"जीवों को कर्मफलानुकूल संसार में घूमते पचते देख, भगवान् निर्हेतुक कृपापात्र बनाते तथा मनुष्य देह देते हैं -

"**कबहुँक करि करूणा नरदेही।देत ईश विनु हेतु सनेही।** उ. 43।3।" और मनुष्य शरीर प्राप्त करने पर ज्ञानियों के संसर्ग द्वारा सभी कर्मफलों को - ""**ज्ञानाग्निदग्धकर्माणां तमाहुः पण्डितं बुधाः।**गी. 4।19।" ज्ञानरूपी अग्नि से दग्ध कर वासनारहित निरञ्जन बन कर भगवान् को प्राप्त कर लेता है। इस अवस्था में इसे भगवत्सेवा छोड़कर और कुछ भी नहीं भाता - "**न नाकपृष्ठं न महेन्द्रधिष्णयम् न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।न योगसिद्धिः पुनः अभवं वा मयि अपिर्त आत्म इच्छति मत् विना अन्यत्।**।भा. 11।14।14।" बल्कि - "**मुक्ति निरादरी भक्ति लुभाने**।उ. 118।4।" याने कल्याण चाहने वाले भक्ति के सामने मोक्ष को भी तुच्छ समझते हैं। "**रमाविलास राम अनुरागी।तजहि बमन इव नर बड़ भागी**।अयो 323।4। बड़भागी मनुष्य धनस्थान से मुख मोड़ कर अलग हट जाते हैं। जैसे भरत राज्य छोड़ पुलहाश्रम जा तपस्या किये किन्तु धनसंग्रही न बने। हाँ, मृग के साथ प्रेम संग्रह किये, तो मृग में ही जन्म लेना

पड़ा। किन्तु पूर्व के संस्कार के चलते फिर भी मुक्ति मिली क्योंकि मृग होने पर भी ज्ञान तो पूर्ववत् ही बना था। इसी से **"प्रतिग्रहो हि दुःखाय"** यह वचन सत्य है।

अक्रूर जी हस्तिनापुर धृतराष्ट्र को समझाने गये थे कि आप नीतिपूर्वक पाण्डवों के साथ व्यवहार करें क्योंकि वे सब आपके प्रजा हैं। किन्तु वे कहे कि -

"यथा वदति कल्याणी वाचां दानपते भवान्। तथानया न तृप्यामि मत्य प्राप्य यथा मृतम्।।

तथापि सुनृता सौम्य हृदि न स्थीयते चले। पुत्रानुरागविषये विद्युत्सौदामिनी यथा।।" हे अक्रूर जी ! आप तो तथ्य कहते हैं किन्तु मेरा मन पुत्रों में लगा हुआ है, अतः आपका कहा मुझे में आकाश में विद्युत् की तरह नहीं ठहरती है। भाव यह है कि धन पुत्रादि में मन लगे रहने के कारण संसार में ही घूमना पड़ता है। इसी विषय में हनुमान् की यह कथा प्रसिद्ध है कि - श्री राम जी को साकेत (वैकुण्ठ) गमन समय साथ में हुनमान् भी थे, जब वे ब्रह्मलोक पहुँचे तो वहाँ की सुख समृद्धि देख हनुमान् का मन आकर्षित हो गया। इनकी ऐसी अभिलाषा समझ कर भगवान् हनुमान् को कहे कि तुम यहीं रहो और ब्रह्मा की आयु भोग कर साकेत में आना। हनुमान् ऐसे भक्त भी भूला करते हैं तो अन्यों की बात ही क्या। अर्थात् भगवत्प्राप्ति के लिये कितनी सावधानी की आवश्यकता है यह तो सोचने समझने की बात है। इसीलिए संग्रह को दुःखद और त्याग को सुखद बताया गया है।

स्त्रियों में दो विभाग है, एक तो गृहलक्ष्मी हैं, जैसे सुमित्रा, शैव्या, सुनीति, विदुरानी, मथुरा की ब्राह्मणी, कुन्ती आदि जो सब प्रायः स्मरणीय हैं। दूसरी कलही कुटिलायें हैं - जैसे शूर्पनखा, चित्रकेतु की स्त्रियाँ, पूतना, मन्थरा आदि। शूर्पनखा के द्वारा राक्षसकुलों का नाश, चित्रकेतु की स्त्रियाँ बालहत्या कर राजा को प्राणसंकट में पहुँचायी। पूतना व्रज के बालकों को मार कर कृष्ण को भी मारना चाही थी। मन्थरा सारी अयोध्या के अनर्थ का कारण बनी। ऐसी स्त्रियों को अत्यन्त दूषित बताया गया है। यहाँ तक कि इन सबों के संगियों को भी दूर से ही छोड़ देना श्रेयस्कर बताया गया है - **"स्त्रीणां स्त्री संगिनां संग त्यक्त्वा दूरत आत्मवान"** **"प्रत्यक्षा स्त्री राक्षसी"**। कुटिला कर्कशा स्त्रियों को प्रत्यक्ष राक्षसी कहा गया है। जैसे दशरथ कैकेयी के पाले पड़े, श्री रामराज्य के दृश्य से वंचित रहते हुए मृत्यु के भी पाले पड़े। सभी प्रकार से स्त्री, धन, पुत्रादि हृदय को आकर्षक होते हैं। अतः इन सबों से बचने की चेतावनी के लिये कहा गया है कि - **"सुत वित नारी ईषणा तीनी। केहि के मति इन्ह कृत न मलीनी।।"**

मानस प्रसंग 20। श्री दशरथ जी और उनका स्वर्गवास।

"स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं द्वादशार्णं महामनुम्। जजाप गौतमी तीरे नैमिषे विमले शुभे।।
तेन वर्ष सहस्रेण पूजितः कमलापतिः। मत्तो वरं वृणीष्वेति तं मनुं भगवान् हरिः।।
ततः प्रोवाच हर्षेण मनुः स्वाम्भुवो हरिम्। पुत्रत्वं भज देवेश त्रीणि जन्मानि चाच्युत।।
इत्युक्तस्तेन लक्ष्मीशः प्रावाच सुमहागिरा। भविष्यामि नृपश्रेष्ठ यत्ते मनसि कांक्षितम्।।
अस्याभूत्प्रथमं जन्म मनो स्वायम्भुवस्य च। रघूणामन्व्ये पूर्वं राजा दशरथोऽभूत्। प.पु.उ.**242।1-9।** पूर्वकाल में स्वांयभुव मनु पुत्रार्थ नैमिषारण्य में गौतमी नदी के किनारे एक हजार वर्ष तक तपस्या किये थे जिसमें द्वादशाक्षर मन्त्र का जाप करते थे। भगवान् प्रसन्न हो इनको वर मांगने का आदेश दिया। मनु कहे कि हे भगवन् ! तीन जन्म तक आप मेरे पुत्र बनें। भगवान् इसको अंगीकार कर गुप्त हो गये। यही मनु रघुकुल में प्रथम बार के जन्म में दशरथ हुए हैं

और भगवान् रामरूप में उनके पुत्र हुए। दशरथ को दो बार और जन्म लेकर भगवान् को पुत्र बनाना है इसलिए इस जन्म में उनको मोक्ष नहीं हुआ है। हाँ, भक्ति करना चाहा है। इसी को मानसकार भी कहते हैं -

"तेहि अवसर दशरथ तहं आये।तनय विलोकी नयन जल छाये।।

ताते उमा मोक्ष नहीं पायो।दशरथ भेद भक्ति मन लायो।।

बार बार करि प्रभुहि प्रणामा। दशरथ हरषि गये सुरधामा।लं. 111।1 एवं 3।" यद्यपि दशरथ के सम्बन्ध में बहुत सी प्रशंसायें मिलती हैं - **"जासु विरचि बड़ भयेउ विधाता। महिमा अवधि राम पितु माता।**बा. 15।4।**भय कोउ अहहि न होनउ हारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा।**अयो. 172।4।" **"तीन काल त्रिभुवन जगमाहीं।भूरि भाग दशरथ सम नाहीं।**अयो. 1।4।" **"सुरपति जेहि आगे कर लेही। अर्ध सिंहासन आसन देही।**अयो. 97।2।" फिर भी ये सब तो इस लोक के लिए ही महत्वजनक हैं न कि मोक्ष धाम के लिए। दशरथ जी कैकेयी की प्रशंसा सुनकर भविष्य में श्री राम जी को मिलने वाला राज्य कैकेयी या उसके पिता अश्वपति को जिम्मा कर उससे व्याह किया। भविष्णु भरत परम भागवत होंगे, इसलिए यह राज्य भगवत् अनर्पित होने के कारण भरत के योग्य नहीं हुआ। और यदि भरत के राज्य मानें तो भरत के निमित्त तो जाने कारण उच्छिष्ट वस्तु को भगवान् कैसे ग्रहण करेंगे ? कौशल्या भी यही कही है - सो वचन यों है। **"यदि पञ्चदशे वर्ष राघवः पुनरेष्यति। जह्याद्राज्यञ्चकोशञ्च...।।"**भरत का भोगा हुआ राज्य को भगवान् पन्द्रहवें वर्ष आने पर कैसे भोगेंगे। लोकव्यवहार में भी प्रथम पंक्ति में भोजन कर लेने क पश्चात् सुधा के समान भी भोजन सुरा के तुल्य समझा जाता है। **"भोजयन्ति किल श्राद्धे केचित् स्वानेव बान्धवान्। ततः पश्चात् समीक्षन्ते कृनकार्या द्विजर्थमान।।**
तत्र ते गुणवन्तश्च विद्वांसश्च द्विजातयः। न पश्चात्तेऽनुमन्यन्ते सुधामपित सुरोपमा।।" दशरथ भरत के संकल्पित वस्तु को श्री राम जी के गुणगण देखकर उनको देना चाहते हैं। गुरु वशिष्ठादि सब मिल राज्याभिषेक की तैयारी कर ही दिये किन्तु पुनः जब दशरथ कैकेयी के सामने पड़ते हैं तो फिर भी यही कहते हैं **"प्रिया प्राण सुत सर्वस तोरे।** अयो.25।3।" और श्री राम जी को भूल जाते हैं, यह इनकी ढुलमुल नीति है, अवसरवादिता है।

देवासुर संग्राम में दशरथ जी के वचनों के बदले में कैकेयी जो वरदान मांगी है उसको नहीं मांगना चाहती है क्योंकि संग्राम में कैकेयी यदि दशरथ को बचायी है तो वह अपने सौभाग्य की रक्षा की है, यदि दशरथ मर जाते तो वह विधवा बन जाती। इसके बदले यदि वह वरदान मांगती है तो वह सतीत्व ध़र्म के प्रतिकूल है क्योंकि पति की सेवा कर कुछ मांगना मजदूरी है। यह कैकेयी की भूल है और भूल की अवस्था में भी दशरथ यह कहते हैं कि - **"दुइ के चार मांग किन लेहू।**अयो. 27।2।" यह क्यों कहते हैं? **"देखहु काम स्वभाव प्रभाऊ।**अयो. 24।2।" दशरथ जी कामवश ही सब कुछ किये हैं।

वन जाते समय कैकेयी श्री राम जी का सभी वस्त्र भी उतरवा लेती है किन्तु दशरथ मूक भाव से रह जाते हैं। इससे यह भी सिद्ध होता है कि इनको यह स्वीकार है। इनके सामने से राम जी जंगल जाते हैं किन्तु दशरथ कुछ भी नहीं बोले। अयोध्या से जाकर राम जी किसी गांव में न रहें, भूमि में ही सोवें, अन्नादि छोड़ कन्द मूल ही भोजन करें इत्यादि नियमों के साथ वनवासी बनाये जा रहे हैं। यदि भरत को राज्य से काम था तो इन व्यर्थ के कठोर नियमों को श्री राम जी पर लादने से क्या लाभ ? किन्तु इस विषय में भी दशरथ जी चुप ही साधे हैं। इसीलिए लक्ष्मण कहे हैं - **"अहं हनिष्ये पितरं वृद्धं कामवशं गतम्।**वा.रा.अयो. 21।19।" सुमन्त जी इसको अनर्थ समझ कर ही कहे हैं कि - **"अपि वृक्षाः परिम्लानाः सपुष्पांकुर कोरकाः।**वा.रा.अयो. 59।4।" राम विरह में वृक्ष लता पुष्पादि भी सूख गये हैं ऐसा आपका कठोर वचन हुआ है। जंगली असभ्य कठोर हृदय वाले भी आपकी आज्ञा को घृणा की दृष्टि से देखते है। **"ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठये वन बालक ऐसे।**अयो. 88।1।" याने माता पिता बुद्धि से काम नहीं लिए हैं। **"बात दृढ़ाई कुमति हंसि बोली।कुमत विहंग कुलह जनु**

खोली। अयो.27।4।" "**सुनी मृदु वचन कुमति अति जरइ।** अयो.32।2।" "**कपट सयानी कहत कछु।** अयो.36।" "**कुटिल कठोर कुबुद्धि कुजाति।**" "**चली कहत मतिमन्द अभागी।** अयो.50।1।"इत्यादि कुवचनों को लोग व्यवहार करते हुए धिक्कारे हैं। इसका प्रधान कारण दशरथ जी का वरदान देना ही है। और दशरथ की बुद्धि कैकेयी के ही कारण गिरी है। इस प्रकार दोनों अनर्थ के कारण बने हैं।

कुछ रामायणियों का यह कहना है कि कैकेयी अति राजनीतिज्ञा थी, वह सोची कि राक्षसों का उपद्रव बढ़ रहा है। यदि राम जी राजा बनेंगे तो शायद राजमद में कहीं भूल न जायें। और यदि अभी वन चले जाते हैं तो राक्षसों का उपद्रव मिट जायेगा तथा भगवान् की लीला में भी वृद्धि होगी। अतः इनको वन में भेजी है। यह तो उत्तम विचार है किन्तु इस विषय में यह सोचना चाहिए कि यदि प्रथम श्री राम जी राजा बना दिये जाते तो स्वतः प्रजापालन, राज्य संरक्षण का भार उनके सिर लदता। प्रजा, ऋषि, देव तथा पृथ्वीमात्र को सुखी बनाते क्योंकि इसी के लिए अवतार ही लिए हैं। "**हरिहौं सकल भूमि गरुआई।** बा. 186।4।" तथा - "**धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।** गी.4।8।" तो क्यों नहीं अनर्थकारियों का विनाश करते ? राजा लोग दिग्विजय कर अश्वमेध करते हैं, इसी यात्रा में राक्षसों का विनाश होता। भरत तथा माता पिता सभी सुखी रहते। कैकेयी तो श्री राम जी को वनवास देकर अत्यन्त कष्ट दी है। स्वतः श्री राम जी इन कष्टों को व्यक्त किये हैं - "**लागहिं अति पहार के पानी। विपिन विपति नहीं जाई बखानी।** अयो.62।1।" कहां तो ऐसी विपत्ति और कहां श्री राम जी की सुकुमारता। इस पर भी वल्कल, जटा, भूमिशयनादि कठोर नियम। ऐसी विपत्ति में श्री राम जी को डालने से दूसरा अकृत्य और क्या हो सकता है।

कोई कोई यह कहते हैं कि कैकेयी अपने ऊपर कलंक लेकर श्री राम जी के यश को बढ़ाई है। यदि ऐसी ही बात होती तो क्या उनको गद्दी पर बैठा कर कहती कि आप दिग्विजयार्थ घूमें और सबों को सुख सुविधा बढ़ायें तो यह और भी उत्तम होता।

श्री राम जी वन से आके प्रथम कैकेयी से मिले हैं, इससे इनकी मर्यादा की रक्षा होती है क्योंकि प्रथम कौशल्या से मिलते तो समझा जाता कि द्वेष वश ऐसा किये हैं। सुमित्रा से मिलते तो यह होता कि लक्ष्मण साथ हैं इसीलिये ऐसा पक्षपात सिद्ध होता। किन्तु कैकेयी को दशरथ संभाल नहीं सके, विवश हो उसके पक्ष को ही पूरा किये हैं। जिस रामधाम प्राप्ति के लिए सभी कर्मों धर्मों का फल त्यागा जाता है, किन्तु दशरथ जी उसको अपनाये हैं और प्रत्यक्ष धर्म की मूर्ति श्री राम जी "**रामो विग्रहवान् धर्मः।** वा.रा.अर. 37।13।" को छोड़कर और सामान्य धर्म सत्यपालन को अपनाया है।

दशरथ जी को राम जी में पुत्रभाव से प्रेम था किन्तु कैकेयी के सामने पड़ने से वह भी चम्पत हो गया। भगवान् तो कल्पवृक्ष के समान मनोवाञ्छित फल को देने वाले हैं - "**संसेवया सुरतरोरिव ते प्रसादः सेवानुरूपमुदयो न परावरस्त्वम्।**" "**देव देवतरु सरिस सुभाउ।** अयो.266।4।" "**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तां तथैव भजाम्यहम्।** गी.4।11।"जो जिस भाव से मुझे जानता है मैं भी उसे वैसा ही समझता हूँ। "**धर्मपाशेन संयतः।**" याने धर्मफल को अपनाया तो उसी के द्वारा बँध गये। मुमुक्षुओं को तो धर्माधर्म दोनों से बचना चाहिए। श्रुति कहती है कि - "**निरंजनः परमसाम्यमुपैति...।**" पाप पुण्य से जो रहित होता है वही परब्रह्म नारायण को प्राप्त करता है। किन्तु दशरथ धर्मा भिमानी हुए। अतः कहा जाता है कि दशरथ ऐसा धर्माभिमानी ओर रावणवत् पापाभिमानी मुमुक्षुओं को नहीं होना चाहिए। दशरथ के द्वारा कुछ दिन के लिये बहुतों को कष्ट झेलना पड़ा है। अतः नियमानुकूल उसी पाप से दशरथ को दूसरे जन्म में भी भगवान् में पुत्रभाव बना रहा है - "**तेहि अवसर दशरथ तहं आये। तनय विलोकी नयन जल छाये।।**" जब राम जी इनको विशेष ज्ञान दिया तो पुत्रभाव मिटा और ईश्वर समझ कर प्रणाम किये - "**बार बार करि प्रभुहि प्रणामा। दशरथ हरषि गये सुरधामा।**" और इसके पश्चात् इन्द्रलोक चले गये हैं। मोक्ष पीछे होगा।

"कछुक काज बिधि बीच बिगारेऊ। भूपति सुरपति पुर पगु धारेऊ।अयो. 159।1।"

"जीवन सफल जनम फल पाये। अन्त अमरपति सदन सिधाये।अयो. 160।2।" सबसे मुख्य विषय विचारने का यह है कि भरत ऐसे व्यक्ति**"जग जपु राम राम जपु जेही।**अयो.217।4।" सो भी कैकेयी को **"पापिनी सबहीं भांति कुलनाशा।**अयो. 160।3।"पापिनी शब्द से सम्बोधन किया है। तथा - **"वर मांगत मन भयउ न पीरा। गिरेउ न जीह मुख परेउ न कीरा।**अयो. 161।1।" **"धिक कैकेयी अमंगल मूला।**।" इत्यादि । तो ऐसी अपराधिनी कैकेयी के कार्य में दशरथ सहायक हुए हैं। कल्याण में भाव ही प्रधान माना गया है। **"तस्मात् भावो हि कारणम्।"** किन्तु दशरथ जी को तो ब्रह्म राम में भी पुत्र ही भाव बना रहा है। मिट्टी बालु पत्थर में ब्रह्मभाव को मानने वाले को मोक्ष हुआ है। किन्तु दशरथ जी तो ब्रह्म राम में भी पुत्र ही भाव रखा है। इसी से देवलोक मिला।

"भगवत अनुकूल, भागवत अनुकूल। भगवत अनुकूल, भागवत प्रतिकूल। भगवत प्रतिकूल, भागवत प्रतिकूल। भागवत अनुकूल, भगवत प्रतिकूल।"इन सबों में आदि अन्त वाले को कल्याण होता है किन्तु मध्य वालों को नहीं। भाव यह कि भगवान् के प्रतिकूल रहने पर भी यदि भागवत अनुकूल हों तो कल्याण होता है किन्तु भगवान् भक्त के विरोधी को कभी नहीं अंगीकार करते हैं। दशरथ जी भगवान् तथा भागवत भरत दोनों के प्रतिकूल आचरण किये हैं इसी लिए मोक्ष नहीं हुआ। इसी लिये इनके सम्बन्ध में मानसकार कोई भी मुक्तिसूचक एक या दो पद नहीं लिखे हैं, जैसे कि औरों के लिए मिलता है। शबरी के लिये - **"तजि योग पावक देह हरिपद, लीन भये जहँ नहीं फिरे।**अर.35 छंद।"जटायु के लिए - **"गिद्ध देह तजि धरि हरि रूपा।**अर.31।1।"

कुछ लोग दशरथ को स्वर्ग के लिए आये पदों को ही तोड़ मरोड़कर इनको मुक्त बनाने का प्रयास किये हैं जो अनुचित झलकता है। क्योंकि शब्द तो कामधेनु है और कामधेनु को मारकर बांधकर दूध लेना अच्छा नहीं, जो यह स्वाभाविक दूध दे वही श्रेयस्कर होता है। इसी तरह शब्द से स्वाभाविक अर्थ लेना चाहिए। हाँ, यह ठीक है कि भक्तों ने मुक्ति से बढ़कर भक्ति को ही माना है- **"मुक्ति निरादरी भक्ति लुभाने।**उ.118।4।" और दशरथ भी वही हरिभक्ति करने के लिए मुक्ति नहीं मांगे यह उत्तम विचार है। यह भी मुक्ति में बाधक हुआ है।

मानस प्रसंग 21।

"औरों एक गुप्त मत सबहिं कहौं कर जोर।शंकर भजन विना नर भक्ति न पावै मोर।उ. 45।" एक समय श्री रामचन्द्र जी सभी अयोध्यावासियों को बुलाकर कल्याण का मार्ग बताते हुए यह कहते हैं, हे पूज्य गुरुजन! तथा प्रिय प्रजाओं! मैं करबद्ध हो कहता हूँ कि जितने प्रकार का कल्याणमार्ग आप सबों को बता चुका हूँ उन सबों में एक और गुप्त गोपनीय मेरा मत यह है कि शंकर भजन विना यह सुगम मेरी भक्ति नहीं प्राप्त हो सकती है। इस दोहे के अर्थ में लोग यही कहा करते हैं कि शंकर भजन याने शिवजी का भजन विना राम जी की भक्ति नहीं मिलती है। यह स्वयं भगवान् श्री राम जी ही कहे हैं, अतः यही फेर में पड़ बहुत से भक्त लोग जीवन भर **"वं वं हर हर"**करते रह जाते हैं। ऐसा क्यों न हो, कारण कि श्री राम जी ने स्वयं अपने मुख से अपने इस गुप्त मत को लोक कल्याणार्थ व्यक्त किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि राम जी की भक्ति बाँटने वाले शिव जी हैं।

उपर्युक्त दोहा के अर्थ करने वालों को यह सोचना चाहिए कि शिवजी के बिना भी किसी भक्त को भगवान् अपनी भक्ति दिये हैं या नहीं ? यदि हाँ, तो **"वदतो व्याघातः"** दोष,भगवान् के नियमों में व्यतिक्रम, भक्तिरूप कोषाध्यक्ष शिव को कदाचित् अप्रसन्नता इत्यादि दोष होगा।

कृपालु भगवान् के करकमलों द्वारा सतत भक्ति का वितरण होता रहता है, उसमें कभी भी शिव की अपेक्षा नहीं की जाती है – **"अविरल भक्ति मांगि वर गिद्ध गयो सुरधाम।अर 32।"** यही नहीं बल्कि नहीं मांगनेवालों को भी वह भक्ति मिलती है – **"सगुन उपासक मोक्ष न लेहीं।तिन्हंकहं राम भक्ति निज देहीं।उ. 111।3।"** यदि उपरोक्त बन्धन भक्ति मिलने में होता, तो ध्रुव, प्रह्लाद को कभी भी भक्ति नहीं मिलती क्योंकि एक दिन भी शिव का नाम ये लोग नहीं लिये हैं, किन्तु –**"भक्त शिरोमणि भे प्रहलादू।बा. 25।2।"** शिव स्मरण बिना भी प्रह्लाद भक्त शिरोमणि हुए हैं। भक्ति प्राप्ति के लिए अन्यान्य उपाय भी बताये गये हैं –

1।सत्संग द्वारा- "भक्ति तात अनुपम सुखमूला।मिले जो सन्त होहिं अनुकूला।अर. 15।2।"

2। ब्राह्मणों में प्रेम के द्वारा- "भक्ति के साधन कहौं बखानी।अर. 15।3।" **"प्रथमहिं विप्रचरणअतिप्रीति।**अर. 15।3।"**"तेहि कर फल पुनि विषय विरागा।तब मम चरण उपज अनुरागा।**अर. 15।4।" **"भरत चरित कर नेम सादर जे गावहीं सुनहीं।सीय राम पद प्रेम अवसि होई भवरस विरति।**अयो. 326।" **"यह संवाद जासु उर आवा। रघुपति चरण भक्ति सोई पावा।** सु.33।2। भगवान् और हनुमान मिलन संवाद का स्मरण।

"मदर्थे धर्मकामार्थान् आचरन् मदपाश्रयः।लभते निश्चलां भक्तिं मय्युद्धव सनातने।भा. 11।11।24।"भगवान् कहते हैं कि जिनका सारा कार्य मेरे ही लिये होता है वे निश्चल भक्ति प्राप्त करते हैं।

"इष्टापूर्तेन मामेव यो यजेतसमाहितः।लभते मयि सद्भक्तिं मत्स्मृतिः साधुसेवया।भा. 11।11।47।"

"इति मां यः स्वधर्मेण भजन् नित्यमनन्यभाक्।सर्वभूतेषुमद्भावो मद्भक्तिः विन्दते दृढ़ाम्।भा. 11।18।44।" इष्टापूर्ति पूर्वक सावधानी के साथ तथा स्वधर्मानुकूल अनन्यभाव से मुझको जो भजता है उसे अनन्य भक्ति मिलती है।

"भक्तिमुक्तिरुपायैः श्रुति सद्विहित साच धीः प्रीतिरूपा। तन्निष्पतिफलेच्छा ह्युपधि विरहितं कर्मवर्णाश्रमादेः।।" जो फलेच्छारहित स्ववर्णाश्रमधर्मानुकूल श्रुति-स्मृति विहित भगवन्निमित्त कर्म करता है उसे भक्ति प्राप्त होती है। नारद से भक्ति पूछती है – मैं कहाँ रहूँ ? नारद का उत्तर – **"...निरन्तर वैष्णवमानसानि।"**वैष्णवों के मानस में भक्ति सतत रहती है।**"यस्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः संगीयतेऽभीक्ष्णममंगलघ्नः। तमेव नित्यं श्रृणुयादभीक्ष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः।।"** जो भगवद्गुण गाता और सुनता है उसे भक्ति मिलती है। इस प्रकार अनेकों भक्ति प्राप्त्यर्थ साधन बताये गये हैं। और बिना शिव जी के दिये इन साधनों द्वारा भक्ति प्राप्त होती है, यह भी उक्त दोहे के अर्थ में व्यतिरेक होगा।

श्री राम जी स्वतः उदारगुण वाले हैं – **"ऐसो को उदार जगमाहीं।**वि.पत्रि. 162।"**"जानत प्रीति रीति रघुराई।**वि.पत्रि. 164।" किस प्रेमी के प्रति क्या करना चाहिए यह श्री राम जी जानते हैं। अतः यदि भगवान् जानते कि शंकर भजन बिना मेरी भक्ति नहीं प्राप्त होती है तो डंके की चोट से यह सबों को जना देते कि जिसको मेरी भक्ति प्राप्त करना है वह शंकर के यहाँ जाया करे किन्तु ऐसा न कर उसको गुप्त मत कहते हैं जो उनके लिए अनुचित जान पड़ता है।

शिव जी का अनन्य भक्त घण्टाकर्ण जब शिव जी से मोक्ष मांगा तो उन्होंने साफ शब्दों में कह दिया कि इसके लिये तुम भगवान् के यहाँ जाओ, किन्तु भगवान् ऐसा किसी को भक्ति प्राप्ति के लिए शंकर के यहाँ नहीं भेजकर स्वतः उसको भक्ति देते हैं और उपाय भी बताते हैं। इससे प्रतीत होता है कि **"शंकर भजन बिना"** नियम को भगवान् ही भंगकर भक्ति बांटते हैं। भक्ति के सम्बन्ध में यह भी है कि – **"भक्ति स्वतंत्र सकलगुणखानी।बिनु सत्संग न पावहीं प्राणी।**उ. 44।3।" सभी गुणों का आकर भक्ति स्वतन्त्र है, किसी की सहारा नहीं चाहती है, किन्तु बिना सत्संग नहीं प्राप्त होती। **'बिनु'** शब्द से अन्य साधन का निषेध किया गया है। उपरोक्त दोहा और चौपाई से बिनु शब्द प्रयोग कर, भक्तिप्राप्ति में अन्य साधनों को निषेध कर, सत्संग और शंकरभजन रखा गया है तो ऐसी परिस्थिति में भक्ति को शिव जी के पराधीन कर देना अनुचित होगा।

भगवान् श्री राम जी सर्वशक्तिमान् तथा सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं, अतः स्वतन्त्र विशेषाधिकार द्वारा भी लोगों को भक्ति देना उचित ही है। जैसे **केवट को - "बिदा किये भगवान प्रभुभक्ति विमल वर देई।**अयो. **102।"जटायु - "अविरल भक्ति मांगि वर गिद्ध गयउ हरिधाम।**अर. **32।"** भक्ति लोगों को मांगने में यह तात्पर्य है कि त्रिपाद्विभूति (वैकुण्ठ) में मुझे कहीं मुकुट कुण्डल न बना लें कि जड़ के तुल्य रहना पड़ेगा। अतः भक्ति ही मांगा करते हैं कि सेवक बनकर सेवा करता रहूँ। इसी में सच्चा सुख है बल्कि एक देह से भगवान् की सेवा करने में तृप्ति नहीं होती है तो **- "एकधा दशधा चैव"**अर्थात् एक से दशों देह धारण कर मुक्तात्मायें भगवान् की सेवा किया करती हैं।

हनुमान भी वही भक्ति मांगे हैं और मिली- "**नाथ भक्ति अति सुखदायिनी। देहु कृपा करि प्रभु अनपायनी**।सु 33।1।" भरद्वाज भी वही मांगते हैं- "**अब करि कृपा देहु वर येहु। निजपद सरसिज सहज सनेहू।106।4।" "सुनि मुनि वचन राम मुसकाने। भाव भक्ति आनन्द अघाने**।अयो. 107।1।" **कुम्भज -"अविरल भक्ति विरति सतसंगा।चरण सरोरुह प्रीति प्रसंगा**।अर. 12।6।" हमें लोक से वैराग्यपूर्वक सत्संग तथा आपके चरणकमलों में प्रेम हो। **अत्रि -"अब मैं जाना मैं श्री चतुराई।भजिय तुमहिं सब देव विहाई**।अर. 5।4।" अब मैं आपकी चातुर्य को समझ गया, सब देवों को छोड़ केवल आपको ही भजना चाहिए। **सरभंग - "जोग जज्ञ जप तप मुनि कीन्हा।प्रभु कह देई भक्ति वर लीन्हा**।अर 7।4।" सभी साधनभूत कर्मो को भगवदर्पण कर भक्ति मांग लिये। **सुतीक्षण - "मन वच कर्म रामपद सेवक।सपनेहु आन भरोस न देवक**।अर. 9।1।**" अविरल प्रेम भक्ति मुनि पाई। प्रभु देखहि तरु ओट लुकाई**।अर. 9।7।" सुतीक्षण स्वप्न में भी किसी देवता की आशा नहीं कर मन वचन कर्म द्वारा भगवान् की भक्ति किये हैं जिसको भगवान् वृक्ष के आड़ होकर देखे हैं। **शबरी से - "कह रघुपति सुनु भामिनी बाता।मानौ एक भक्ति कर नाता**।अर. 34।2।" **"सकल प्रकार भक्ति दृढ़ तोरे**।35।4।" शबरी से श्री राम जे कहते हैं कि एक भक्ति की ही नाता मानता हूँ, तुममें तो सबों प्रकार की भक्ति विद्यमान है।इस प्रकार संक्षेप में भक्ति का साधन और उदाहरण बताया गया है और भी सर्वत्र सद्ग्रन्थों में पाये जाते हैं। **"बहवः मत्पदं प्राप्ताः त्वाष्ट्रकायाधवस्तथा"** बहुत से भक्त भगवान् की भक्ति द्वारा मोक्ष प्राप्त किये हैं किन्तु वे सब कभी भी कल्याणार्थ शिव का नाम तक नहीं लिये हैं। शिव जी के ही बहुत से गण पड़े हैं जिनको भगवद्भक्ति नहीं मिली है। यदि शिव जी ही राम की भक्ति बांटने वाले होते तो बाणासुर मणिभद्र आदि भक्ति को कब भी ही दे दिये होते।इससे यह सिद्ध हुआ कि राम की भक्ति के लिए शिव जी की अपेक्षा नहीं है। फिर भी इस दोहा का अर्थ क्या होगा यह प्रश्न रह जाता है। अतः इसका समाधान यों होगा - **"शं कल्याणं करोतीति शंकर ः सत्संगः"** याने सत्संग द्वारा ही कल्याण होता है। इसी को राम जी भी कहते हैं - **"बिनु सत्संग न पावही प्राणी**।उ.44।3।" अथवा कल्याण करने वाला रामनाम है इसके भजन विना भक्ति नहीं मिलती। अथवा कल्याण करने वाले सन्तजन हैं। **"भक्ति तात अनुपम सुखमूला। मिले जो सन्त होहिं अनुकूला**।अर.15।2।" इन्हीं तीनो प्रकारों द्वारा दोहा का अर्थ यह होता है कि कल्याण करने वाला (सत्संग, सन्तजन, रामनाम) के भजन के बिना भक्ति नहीं मिलती।

1। **"सत्संगति महिमा नहीं गोई।।" " वाल्मीकि नारद घटयोनि।निज निज मुखन कही निज होनी**।बा. 2।1 एवं 2।" याने वाल्मीकि नारदादि भक्ति द्वारा ही विश्वविख्यात हुए हैं और यह भक्ति सत्संग द्वारा ही प्राप्त हुई है। **"सत्संगेन हि दैतेया जातुधानाः खगादयः**।भा. 11।12।3।" सत्संग द्वारा दैत्यादिकों को भी भक्ति मिली है। और **"राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा**। बा.1।4।" सत्संगरूपी सुरसरि में राम भक्ति की धारा बहती है, याने यहाँ ही भक्ति मिलती है।

2। सन्तजन (भगवद्भक्त) के सम्बन्ध में स्वयं मानसकार कहे हैं - **"राम सिन्धु घन सज्जन धीरा।चन्दन तरु हरि सन्त समीरा**। उ.119।9।" भगवान् अपने से बड़ा सन्तों को बताते हैं- **"मोते अधिक सन्त कर लेखे।**

अर.35।1।" "**तुम सारिखे सन्त प्रिय मोरे।धरौं देह नहीं आन निहोरे।** सु.47।4।" सन्तों के लिए ही भगवान् अवतार लेते हैं।

3। कल्याणकर्त्ता ""**राम नाम को कल्पतरू......** ।बा. 26।" "**राम न सकहिं नामगुण गाई**।बा. 25।4।" रामनाम कल्पवृक्ष के समान सबकुछ देने वाला है।इस नाम में जो गुण है वह राम जी भी नहीं जानते हैं। **नामजपत प्रभु किन्ह प्रसादू।भक्तशिरोमणि भे प्रह्लादू**।बा. 25।2।" याने राम नाम जपने ही से प्रह्लाद भक्त शिरोमणि हुए हैं। "**वर्षाऋतु रघुपति भगति तुलसी शालि सुदास।रामनाम वर वरणयुग श्रावण भादो मास**।बा. 19।" इस दोहा में नाम और भक्ति एक बताया गया है। राम नाम याने रा और म यही दो अक्षर श्रावण और भादो दो मास हैं। ऋतु मास से पृथक नहीं होता है याने ये दोनों अक्षर ही ऋतु भी हैं अर्थात् भक्ति और राम नाम में कोई भेद नहीं है।

"**शंकर भजन**" यहाँ पर मध्यमपदलोपी समास (शंकर सदृश भजन शंकरभजन) द्वारा भी एक अर्थ यह हो सकता है कि शंकर जी जैसे भगवान् का भजन किया करते थे उसी प्रकार निरन्तर भजन करने से भक्ति मिलेगी। यह अर्थ युक्तिसंगत प्रतीत होता है किन्तु शंकर शिव का नहीं। क्योंकि कल्याण प्राप्ति में देवताओं को निषेध किया गया है "**कामैस्तैस्तैः हृतज्ञानाः प्रपद्यन्ते अन्यदेवताः**।गी. 7।20।" याने कामादि दोषों के कारण ज्ञान अपहरण हो जाने से मनुष्य अन्य देवों की प्रपत्ति करता है। रुद्र की पूजा से तो हानि ही होती है। "**भवव्रतधारा ये च ये च तान् समनुव्रताः। पाषण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः।।**" "**रुद्रभक्ताश्च ये लोके भस्मलिंगास्थिधारिणः।ते पाषण्डत्वमापन्ना वेदवाह्या भवन्तु ते।।**" शिवोपासकों को पाषण्डी और वेदबाह्य बताया गया है। स्वयं शिव भी कहते हैं - "**नैवं विधोऽहमाराध्यः संसारन्मोक्षमिच्छता।**" मुमुक्षुओं द्वारा मैं आराध्य नहीं हूँ।

इन सभी विषयों को विचारते हुए उक्त प्रसंग में शंकर शब्द का अर्थ शिव जी न होकर कल्याण कारक अपने ही को राम जी बता रहे हैं। यह लीला अवस्था में भी भगवान् अपना शुद्ध स्वरूप का ज्ञान करा रहे हैं। जिसको महादेव कहते हैं - "**गुप्तरूप अवतरेउं प्रभु**।बा. 48।" अर्थात् भगवान् अपना गुप्त स्वरूप को प्रकट कर रहे हैं इसीलिए दोहा में "**गुप्त मत**" यह पद आया है।

अथवा जिसके द्वारा कल्याण होता है, भगवान् सत्संग तथा सन्तजन इन सबों की प्राप्ति में भी हमारी कृपा ही कारण है "**बिनु हरिकृपा मिलही नहीं सन्ता**। सु. 6।2।" और वह कृपा कटाक्ष किन साधनों से प्राप्त होता है यह गुप्त है। '**कर जोर**' कहने का यह भाव है कि "**आत्मानं मानुषं मन्ये**" भगवान् अपने को राजकुमार मानते हैं - "**कोशलेश दशरथ के जाये। हम पितु वचन मानि बन आये**।कि. 1।1।" श्रेष्ठ पुरुषों में नम्रता प्रधान गुण है, अतः सबों के सामने करबद्ध हो उपदेश सुना रहे हैं। इन सभी पूर्वापर विचारों के आलोड़न द्वारा यही झलकता है कि उक्त दोहा में शंकर शब्द कल्याण वाचक है। भगवान् का नाम भी शंकर है - "**शंकरोषि सदा देव ततः शंकरतां गतः**। हरिवंश प.3।"

मानस प्रसंग 22 । "**मोह न नारि नारि के रूपा । पन्नगारि यह नीति अनूपा**। उ. 115।1।" यह उत्तरकाण्ड भक्तिनिरूपण प्रकरण की चौपाई है।माया और भक्ति दोनों स्त्री जाति की हैं। माया की शक्ति भगवद्भक्तिवानों का कुछ नहीं बिगाड़ सकती है। सती के सतीत्व के सामने उसका प्रभाव मन्द पड़ जाता है। जैसे भगवद्भक्तिमती सती जानकी के सामने चण्डी, दुष्ट से दुष्ट प्रकृति वाली लंका की राक्षसियों का कुछ भी नहीं चल सका, याने दुष्टों का संग जानकी को नहीं बिगाड़ सका है वह ज्यों की त्यों खरी रह गयीं। स्त्रियों का रूपादि देख छुद्र पुरुषों का मन क्षुब्ध होता है किन्तु स्त्रियों का नहीं। यही चौपाई का भाव है किन्तु कुछ व्यक्ति बालकाण्ड सीता स्वयंवरकालिक चौपाई - "**रंगभूमि जब सिय पगुधारी।देखि रूप मोहै नर नारी**।बा. 247।2।" को उपस्थित कर यह प्रश्न करते हैं कि जब '**मोह न नारी नारी के रूपा**' तब सीता को देखकर स्वयंवर की स्त्रियाँ क्यों मुग्ध हो गयीं ?

उत्तर - प्रथम तो यह विचारना चाहिए कि किसी भी पद्यादि के अर्थ करते समय **"शक्ति ग्रहं व्याकरणोपमानं कोशाप्तवाक्याद् ...।"** इत्यादि नियमों के अनुकूल अनेकार्थक शब्द के अर्थ निर्णय में **"सामर्थ्यमौचिती देश कालो व्यक्ति...।"** याने देश काल का ध्यान अनिवार्य होता है। यहाँ तो देश काल भिन्न भिन्न है याने दोनों दो प्रसंग की बातें हैं। और मोह शब्द अनेकार्थक है, बहुत से अर्थों में यह प्रयुक्त हुआ है। जैसे - 1। **"भये मोहवश सब नरनाहा।** बा. 247।4।" यहाँ मोह का अर्थ पश्चात्ताप है। क्योंकि राजालोग पछताते हैं कि जानकी लाभ से हमलोग बंचित रह गये। 2।**"मोहि भयउ अति मोह प्रभुबन्धन रण महँ निरखि**।उ. 68।" यहाँ पर मोह शब्द भ्रमवाचक है। 3।**"जो नहीं होत मोह अति मोही**।उ. 68।2।" 4।**"तुमही न संशय मोह न माया**। उ. 69।2 ।" 5।**"पठये मोह मिसु खगपति तोही**।उ.69।2।" 6।**"मोह न अन्ध कीन्ह केहि केहि**।उ. 69।3।" 7।**"यहाँ मोह कर कारण नाहीं**। उ.71।4।" 8।**"महामोह उपजा हिय मोरे**।।" इन सभी स्थलों में मोह शब्द का अर्थ केवल एक अज्ञान ही है। 9।**"जो मतिमन्द विषयवश कामी।प्रभु पर मोह धरहि इमि स्वामी**।उ. 72।1।" 10। **"नौकारुढ़ चलत जग देखा।प्रबल मोहबश आपुन लेखा**। उ.72।3।" इन स्थलों में मोह शब्द दोष वाचक है। 11।**"मोह गये बिनु रामपद होय न दृढ़ अनुराग**। उ.61।" 12।**"यहाँ मोह कर कारण नाहीं।रबि सन्मुख तम कबहुं कि जाहीं**।उ.71।4।" 13।**"देखि परम पावन तव आश्रम।गयउ मोह संशय नाना भ्रम**।उ.63।1।" 14।**"तब कछु काल करिये सत्संगा।तब यह होय मोह भ्रम भंगा**। उ.60।2।" यहाँ मोह शब्द का अर्थ ईश्वर में अविश्वास है। 15।**"करहिं मोहवश नर अघ नाना ।स्वारथरत परलोक नशाना**।उ. 40।2।" 16।**"लोभ मोहमद युक्त किरातहिं**।उ.29।3।" यहाँ मोह का अर्थ संसारी वस्तु में प्रेम का है। 17।**"मद मोह महा ममता रजनी**।उ.13।3।" ऐहिक वस्तु में प्रेम। 18।**"शिव विरञ्चि कह मोहै को है वपुरा आन**।उ.62।" 19।**"कौड़ी कारण मोहवश करहि विप्र गुरु घात**।उ.99।" यहाँ मोह शब्द लोभवाचक है। 20।**"मोह मोहे सकल मन्त्रण ते मुख मूंदि**।।" यहाँ मोह द्वारा मूर्छित करना बोध होता है। अहिरावण बन्दरों को मूर्छित कर श्री राम जी को ले गया है। 21।**"नृप अभिमान मोह वश किंबा।हरि आनेसि सीता जगदम्बा**।लं. 19।3।" यहाँ अज्ञानवाचक मोह शब्द है। 22।**"बूड़ेउ सकल समाज प्रथम चढ़े जो मोहवश**।बा.261।" यहाँ मोह का अर्थ राजाओं के बल का अभिमान है। 23।**"अति प्रचण्ड रघुपति के माया।जेहि न मोह अस को जग जाया**। बा.127।4।" यहाँ मोह का अर्थ भुलाना है। 24। **"जासु सत्यता ते जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया**। बा.116।4।" 25।**"माया कृत गुण दोष अनेका।मोह मनोज आदि अविवेका**।उ. 56।1।" यहां माया कार्य मोह का अर्थ है। 26।**"खेद खिन्न मन तर्क बढ़ाई। भयउ मोहबश तुम्हरे नाई**।उ. 58।1।" मोह का अर्थ ईश्वर में अविश्वास है। शिव पार्वती से कहते हैं कि जैसे तुम भूल कर श्री राम जी को ईश्वर नहीं मान परीक्षा लेने गयी थी उसी प्रकार गरुड़ भी उनमें अविश्वास किये थे। 27।**"जो ज्ञानिन कर चित अपहरई।बरिआई बिमोह बस करई**।उ. 58।3।" जो माया ज्ञानियों के चित्त को चुरानेवाली है तथा ईश्वर में भ्रम उत्पन्न करा देती है। इस प्रकार मोह शब्द सन्देह उत्पादक है। 28। **"बिनु सत्संग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग। मोह गये बिनु रामपद होय न दृढ़ अनुराग**। उ. 61।" सत्पुरुषों के सहवास विना भगवान् की कथा नहीं प्राप्त हो सकती। और कथा बिना ईश्वर प्रति सन्देह नहीं दूर हो सकता, सन्देह भागे बिना ईश्वर में दृढ़ विश्वास नहीं हो सकता। 29। **"सुख सन्दोह मोह पर माया गुण गोतीत**।बा. 199।" यहां मोह शब्द मायावाचक है। 30।**"काम क्रोध मद मोह नशावन**। बा.42।3।" यहां मोह का अर्थ अज्ञान है। 31।**"परिहरि मान मोहबश भजहु कोसलाधीश**। सु. 39।" यहां मोह शब्द सांसारिक वस्तुओं में प्रेमवाचक है। 31।**"काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह की धार**।अर. 43।" यह भी संसार में प्रेमवाचक है। 32।**"प्रभु माया बलवन्त भवानी।जाहि न मोह कवन अस ज्ञानी**।उ.61।5।" यहां मोह भुलाना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 33।**"जाय सुनहु तुम हरि गुण भूरी।होइहिं मोह जनित दुःख दूरी**। उ.61।3।" गरुड़ से महादेव जी कहे कि तुम काक भुसुंडी के पास जा भगवान् के गुणों को सुनो तो तुम्हारा दुःख दूर होगा और राम जी ईश्वर प्रतीत होंगे। 34।**"मोह सकल ब्याधिन कर मूला। तेहि ते पुनि उपजहिं सब शूला**। उ.120।15।" यह मोह सांसारिक विषय में प्रेम है। 35।**"गयउ मोह संशय नाना भ्रम**। उ.63।1।" यहां मोह अविश्वास अर्थ में है। 35। **"जे मतिमन्द विमोहवश हृदय धरहिं कछु आन**। बा.49।" यहां मोह का अर्थ दैवी माया है। 36। **"मोह न अन्ध कीन्ह केहि केहि।जो जग काम नचाव न जेहि**। उ.69।4।" यहां मोह शब्द का अर्थ सांसारिक वस्तु में लोभ है। 37।**"मोह बिपिन कर नारी बसन्ता**। अर.43।1।" मोह शब्द मुह धातु से बना है। मन को विकल कर देना अर्थ में मुह धातु है। अतः मोह का अर्थ हुआ चित्त विकल करने वाला। मोह मनुष्य के मन को विकल कर वासनाओं

को बढ़ा कुजगह में पटक देता है। **38।"तजहु मान मद मोह सब भजहु कोशलाधीश।** सु.39।" यहां मोह शब्द हठ अर्थ में आया है। विभीषण रावण को कहता है कि अहंकार हठ को छोड़कर भगवान् का भजन करो। **39।"उमा राम विषयक अस मोहा।** बा.116।2।" यहां मोह शब्द राम जी में सन्देह वाचक है। **40। "देखि देखि आचरण तुम्हारा। होत मोह मम हृदय अपारा।**उ.47।2।" यहां मोह शब्द अनभिज्ञता का द्योत्तक है। **41।"तुम्हरे सुमिरन ते मिटही मोह मार मद मान।** बा.128।" यहां मोह का अर्थ अभिमान है। **42।"श्री विमोह जेहि रूप निहारी।** बा.129।2।" यहां मोह शब्द का अर्थ लालच है। **43। "विगत मोह मन हर्ष विशेषी।** बा.138।1।" **44।"तन कर अस बिमोह मोहि नाहीं।** बा.108।4।" **45।"शोक मोह सन्देह भ्रम मम बिचार कछु नाहीं।** बा.112।" 46।"**सुरहित दनुज बिमोह नशीला।** बा.112।4।" **47।"जदपि मोह बश कहेउ भवानी।** बा.113।4।" **48।"जिनकृत महामोह मदपाना।** बा.114।4।" इन चौपाइयों में मोह शब्द ईश्वर में अविश्वास अर्थ में है। **49।"जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा।तेहि किमि कहिये विमोह प्रसंगा।** बा.115।2।" **50।"नहीं तहं मोह निशा लवलेशा।** बा.115।3।" **51।"प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्राणी।**बा.116।1।" इन चौपाईयों में मोह का अर्थ विफलता है। **52।"मुनि मोह सो अचरज भारी।।" 53।"मुनि अति विकल मोह मति नाठी।** बा.134।3।" **54। "मुनिहि मोह मन हाथ पराये।** बा.133।3।" इन सभी चौपाईयों में मोह का अर्थ कामदेव है। **55।"मोह कलित व्याकुल मति मोरी।** उ.81।4।" **56।"पाछिल मोह समुझि पछतावा।**उ.92।2।" **57। "तुम निज मोह कहा खग साई।** उ.69।3।" **58। "मोह जलधि बोहित तनु भयउ।** उ.124।2।" **59।"मोह सकल ब्याधिन कर मूला।** उ.120।15।" इन स्थलों में मोह ईश्वर में अविश्वास वाचक है। **60।"रमा समेत रमापति मोहे।** बा.316।2।" यहां मोह का अर्थ आनन्द है। **61।"मोह मनोज आदि अविवेका।** उ.56।1।" इसमें मोह का अर्थ भुलाना है। **62। "महामोह महीशेष विशाला।रामकथा कलिकाल कराला।** बा.46।3।" **63। "मोह पाश जेहि गर न बंधाया। सो नर तुम समान रघुराया।**कि. 20।3।" यहां मोह शब्द संसारबन्धन वाचक है। **64।"मोह महा घन पटल प्रभञ्जन।**लं.114।1।" यहां मोह शब्द अज्ञानवाचक है। **65।"हरि माया मोहहि मुनि ज्ञानी।**बा.139।4।" **66।"सुर नर मुनि कोऊ नाहि जेहि न मोह माया प्रबल।बा.140।"** यहां मोह भूलना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 67।"**सुनु मुनि मोह होय मन ताके। ज्ञान विराग हृदय नहीं जाके।बा.128।1।"** 68।"**मोह मगन मति नहिं विदेह की।महिमा सिय रघुबीर सनेह की।अयो.285।4।"** यहां मोह शब्द भगवान में अत्यन्त प्रेम वाचक है। 69।"**व्यापक ब्रह्म बिरज बागीशा।माया मोह पार परमीशा।**उ.57।4।" यहां मोह अज्ञान वाचक है। **70।"राम सच्चिदानन्द दिनेशा।नहि तहं मोह निशा लवलेशा। बा.115।3।"** यहां मोह अन्धकारवाचक है।

इस प्रकार मोह शब्द बहुत स्थलों में और बहुत अर्थों में व्यवहृत हुआ है। किन्तु उपरोक्त **"रंगभूमि जब सिय पगुधारी। देखि रूप मोहे नर नारी।।"** देश कालानुसार मोह शब्द आश्चर्यवाचक है याने श्री जानकी जी के अपूर्व रूप देखकर रंगस्थल की सभी नर नारियाँ आश्चर्यचकित हो गयीं। क्योंकि - **"जगत जननी अतुलित छबि भारी। बा.247।1।"** यह जानकी अप्राकृत अमानुषी जगत् जननी हैं। इनकी शोभा अतुलनीय है, तो ऐसी शोभा देखनेवालों को क्यों नहीं आश्चर्यचकित करे ? मानसकार तो श्री जानकी जी की शोभा को अतिशय द्योतनार्थ - स्पष्टनार्थ लक्ष्मी की शोभा से भी आगे बढ़ाकर कहे है और इसके सम्बन्ध में कहना ही क्या है। मोह शब्द यहां क्षोभक नहीं है, आश्चर्यकारक है।

मानस प्रसंग 23।

"**रघुवंशभूषण चरित जे नर कहहिं सुनहि जे गावहीं।कलिमल मनोमल धोइ विनु श्रम रामधाम सिधावहीं।।**

सतपंच चौपाई मनोहर जानि जे नर उर धरे। दारुण अविद्या पंच जनित विकार श्रीरघुपति हरे।। उ 129। छंद 2।"

इस छन्द में "**रघुवंशभूषण चरित**" वस्तु विशेष्य है और इसी विशेषण महत्व द्योतक "**सतपंच चौपाई** " पद आया है। '**अंकानां वामतो गतिः**' इस नियम के अनुकूल सतपंच पद 5100 पांच हजार एक सौ का वाचक है अर्थात् इतने चौपाइयों में श्रीरामचरित्र, लीला, गुण वर्णित है। इसको कथारूप में कहने और अनेकों लय ताल स्वर में गानेवालों को तथा श्रवण करनेवालों को पंचभूत विकार (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान तथा मत्सर) को श्री राम जी दूर कर देते हैं जिससे शुद्ध अन्तःकरण वाला प्राणी रामधाम को प्राप्त करता है। सतपंच चौपाईयों द्वारा रचित चरित्र का अधिनायक श्री रामचन्द्र हैं, अतः इसका इतना प्रभाव है। रघुकुल में रामचन्द्र अवतार लेकर

अपना अनन्त कल्याण गुणों द्वारा परम पावन अनेकों चरित्र किये हैं। जैसे जटायुमोक्ष, देवों की रक्षा, शबरीतारण, जंगलियों का उद्धार इत्यादि। इससे इस कुल का महत्व और अधिक हुआ है, इसीलिए ऊपर भूषण शब्द आया है। अर्थात् श्री राम जी कुल का भूषण याने शोभावर्द्धक हैं। मानस का प्रधान वस्तु रामचरित ही है। अतः -

"**राम चरित जे सुनत अघाहीं। रस विशेष जाना तिन नाहीं**।उ. 52।1।"

"**देखि चरित अतिनर अनुहारी। भयउ हृदय मम संशय भारी**।उ. 68।1।"

"**रघुपति चरित समास बखाना**।लं. 59।1।" "**यह सब गुप्त चरित मैं गावा**।उ. 88।2।" इन चरित्रों में भगवान् का कल्याणगुण ही प्रधान है। इसीलिए - "**जग मंगल गुण ग्राम राम के। दानि मुक्त धन धर्म धाम के**।बा. 31।1।" भगवच्चरित्र मंगलदायक है।

2- सतपंच चौपाई का यह भी अर्थ होता है कि सत्य वस्तु (श्रीरामचरित्र) को पाँच प्रकार से प्रतिपादन किया गया है। "**व्यास समास स्वमति अनुरूपा**।उ. 122।1।" "**सूझहि रामचरित मणिमानिक।गुप्त प्रकट जहं जो जेहि खानिक** ।बा.बंदना 4।" अर्थात् सत्यवस्तु श्रीरामचरित्र विस्तृत, संक्षिप्त, प्रकट, गुप्त तथा सत्य (यथार्थ) रूप में वर्णित है। '**चौपाई** ' का अर्थ चार पांव वाला होता है। श्लोक, छन्द, दोहा, सोरठा और चौपाई सबों में चार चार चरण हैं। सम्पूर्ण रामायण श्लोक, छन्द, दोहा, सोरठा और चौपाई से ही वर्णित है। इसीलिए ऊपर चौपाई में मनोहर आया है। "**यही मह रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा**।बा. 9।1।"

3- रामायण को सभी चौपाइयों (दोहा, छन्द, सोरठा) में इकार मकार रखा गया है। इससे रामनाम के तुल्य होने से सबके हृदय में धारण के योग्य हैं। कुछ भी त्याज्य नहीं है। इससे अविद्या (माया) का नाश और रामधाम की प्राप्ति होती है। क्योंकि भगवच्चरित्र सम्बन्धी सभी शब्द रामरूप हैं - "**शब्दब्रह्म परब्रह्म ममोभे शाश्यती तनूः। शब्दब्रह्मणि निष्णातः परब्रह्माधिगच्छति**।।" अर्थात् ब्रह्म वाचक और वाच्य दोनों ही मेरी देह है। और शब्द में पूर्व ज्ञान हो जाने पर परब्रह्म की प्राप्ति होती है।

4- अथवा 'माहहिं पितहिं' जैसे दीर्घ माता पिता के स्थान में ह्रस्व भी प्रयुक्त होता है इसी प्रकार यहां भी सत से सात और पंच से पांच समझना चाहिए। याने सप्तश्लोकी गीता, चतुश्लोकी भागवत, या "श्लोकं श्लोकपादं वा" की तरह यहां भी यही समझना चाहिए कि कम से कम पांच सात चौपाई भी श्री राम का स्वरूप समझ ध्यान में रखें तो कल्याण होता है। उन सात चौपाइयों को उत्तर काण्ड के **75** वें दोहा के "मरकत मृदुल मनोहर हासा" से "रूप राशि नृप अजिर बिहारी" तक समझना चाहिए। याने इन सातों चौपाइयों का अर्थ हृदयस्थ करने से कल्याण होता है। पांच चौपाइयों में अरण्य काण्ड के सन्तलक्षण समझना चाहिए।

5- अथवा सात और पांच जोड़ने से बारह होता है। अर्थात् सतपंच चौपाई का अर्थ बारह चौपाई जो अयोध्यावासियों को श्री राम जी का उपदेश - "**बड़े भाग मानुष तन पावा**।उ.42।4।" से "**ताकर सुख सो जानई चिदानन्द सन्दोह**।उ.46।" तक उपदेश कल्याणकारक है। इससे अन्तःकरण की शुद्धि और रामधाम दोनों मिलते हैं। क्योंकि बिना उपदेश के अज्ञान नष्ट नहीं होता। अतः भगवान् अयोध्यावासियों को बुलाकर उचित अपना उपदेश सुनाये हैं। "**जो परलोक यहां सुख चहहूं। तौ मम वचन छाड़ि छल गहहू**।उ.44।1।" याने ज्ञान सूर्य द्वारा सबों का अज्ञानान्धकार दूर किये हैं।

6- अथवा "**यावनार्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके**।गी.2।46।" "**मधुकर सरिस सन्तगुण ग्राही**।बा.9।3।" के सदृश रामनामपरक चौपाइयों को चुन लेते हैं। जो "**सकल शौच करि जाई नहाये**। बा.226।1।" से लेकर भरतप्रेम अयोध्याकाण्ड तक पाँच सौ चौपाइयों को जानना चाहिए।

7- अथवा पाँचों प्रकार के चौपाइयों में से एक एक चौपदी लोग चुन लेते हैं।

नील सरोरुह नील मणि नील नीर धर श्याम। अंग अंग पर बारिये कोटि कोटि सतकाम। बा. 146।
नील जलज तनु श्याम काम कोटि शोभा अधिक। सुनिये तासु गुण ग्राम जासु नाम अघ खग वधिक। कि. 30।
प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवास दुःखितः। मुखाम्बुज श्रीरघुनन्दनस्य में सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा। अयो. 2।
नीलाम्बुज श्यामलकोमलांग सीतासमारोपित वामभागम्। पाणौ महासायक चारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्। अयो. 3।
सान्द्रानन्द पयोद सौभग तनुं पीताम्बरं सुन्दरम्। पाणौ वाण सरासनं कटिलसत्तूनीरभारं वहम्।।
सीतालक्ष्मण संयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे। अर. 2 ।
केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नम्। शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम्।।
पाणौ नाराच चापं कपि निकर युतं बन्धुना सेव्यमानम्। नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारुढ़रामम्। उ. 1।
कोशलेश पदकंज मंजुलौ कोमलाज महेशवन्दितौ। जानकी करसरोज ललितौ चिन्तकस्यमनभृंगसंङ्गितौ। उ. 2।
इन चौपाइयों को ध्यान में रखने से अविद्या का नाश तथा भगवत्प्राप्ति होती है।
8-अथवा सत पंच सात गुणे पाँच याने पैंतीस चौपाई जो सम्पूर्ण रामायण संक्षिप्त में उत्तरकाण्ड में वर्णित है उसको भी सत पंच से कह सकते हैं।
9-श्री राम जी के अवतारकाल से नारद की स्तुति पर्यन्त (षठमुखी वार्ता छोड़कर) सत पंच चौपाई(पांच सौ) चौपाइयों में रघुवंशभूषण श्री राम जी का चरित्र रहने के कारण सत पंच से यह भी समझा जा सकता है।
10- श्री राम जी का बाल स्वरूप जो काकभुशुन्डि देखे थे तथा उनका विश्वरूप जो कौशल्या देखी थी। यह भी सात सात ही चौपाइयों में वर्णित है। यह भी **'सत'** शब्द द्वारा समझना चाहिए।
11- **'सत पंच'** सात गुणे पांच याने पैंतीस चौपाइयों में विभीषण की शरणागति भी है - इसलिए यह भी समझा जाता है।
12- अथवा सत पंच पद को सत्य वस्तु का पंच याने श्री रामचरित वर्णित सभी चौपाइयां सत्यवस्तु का निर्णायक है ऐसा समझना भी युक्ति युक्त है। क्योंकि श्री राम जी को छोड़कर केवल सीता में प्रेम करने वाला रावण मारा गया, तथा सीता को छोड़कर केवल श्री राम जी में प्रेम करने वाली शूर्पनखा का नाक कान कटाया जिससे राक्षसों का सर्वस्व विनाश हुआ। सीता राम दोनों में प्रेम करने वाले विभीषण भक्त को सम्मानपूर्वक राज्य मिला। इससे यह निश्चय हुआ कि दोनों तत्वों में भक्ति करने से ही कल्याण होता है। यही सत्य वस्तु का पंच (निर्णायक) चौपाइयां है।

"**सुधि करु अम्बरीष दुर्वासा**। अयो. 264।2।" सुधी शब्द से यह अर्थ निकलता है कि अम्बरीष के लिये भगवान् दशबार अवतार लिये हैं, ऐसे भक्तहितकारी भगवान् हैं और भक्त के प्रति अपराध करने वाले दुर्वासा को कहीं कोई भी शरण नहीं दिया। यह निश्चयात्मक सत पंच चौपाई है।

जयन्त के समान अपराधी को भी शरणागत होने पर क्षमा प्रदान किया गया। इससे यह सिद्ध होता है कि अपराध के सहित भी भगवान् के शरण में जाने से कल्याण होता है। निषाद, शवरी, गिद्ध, अजामिल इत्यादि के उद्धार से यह सिद्ध हुआ कि भगवान् के यहां जाति पाति की महत्ता नहीं, बल्कि कल्याण के लिए उनमें केवल एक प्रेम की आवश्यकता है। "**रामहि केवल प्रेम पियारा**। अयो. 136।1।" इस प्रकार सम्पूर्ण रामायण सत्यवस्तु के प्रतिपादक हैं। किन्तु सत पंच पद का अर्थ सम्पूर्ण रामायण न होकर अन्यान्य जो अर्थ ऊपर निर्णीत हुआ वह सन्तोषप्रद नहीं है क्योंकि सत पंच चौपाई को मानसकार मनोहर बताये हैं - "**पुरइन संघ न चारू चौपाई**। बा. 36।2।" याने रामायण की चौपाइयां सघन पुरइन पत्र है और छन्द दोहा सोरठा इत्यादि इसके फूल (कमल) हैं। कमल युक्त ही परइन सुशोभित होता है न कि कमल छोड़कर। अतः छन्द दोहा सोरठा युक्त सभी चौपाइयों को सत पंच द्वारा समझना चाहिए।